निमित्त | fo'ofo|ky; ifjlj dh jpukRed vfHk0;fDr dk leor i;kl

ISSN 2455 – 4502

uojl#fpjk fufefrekn/krh Hkkjrh dotl;fr

=ekfld b&if=dk

o"k 2 vad 3&4 ¼l;qDrkad½

निमित्त

निमित्तमात्रं भव!

fo'ofo|ky; ifjlj dh jpukRed vfHk0;fDr dk leor i;kl

egkRek xka/kh vrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;] o/kk

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

गांधी हिल्स, वर्धा – 442 001 (महाराष्ट्र)

नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त

ISSN 2455 – 4502

lj{kd
çk- fxjh'oj feJ
dyifr
egkRek xk/kh vrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;
o/kk&442001 (egkjk"V)

ijke'k
çk- vkun o/ku 'kek
çfrdyifr
egkRek xk/kh vrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;
ikLV& fgnh fo'ofo|ky;] o/kk&442001 (egkjk"V)

l;ktu&liknu
Mk- 'kHk tk'kh
lgk;d çkQlj

Jh fxjh'k pæ ik.M;
çHkkjh] yhyk
jpuk Hktu dk irk & nimitta@hindivishwa.org

vkoj.k ,o lkt&lTtk
Jh jkt'k vkxjdj
lgk;d] idk'ku foHkkx

© lcf/kr y[kdk ,o jpukdkjk }kjk ljf{kr

çdk'kd
dylfpo
egkRek xk/kh vrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;
ikLV& fgnh fo'ofo|ky;] o/kk& 442001 (egkjk"V)

ukV& çdkf'kr jpukvk dh jhfr&uhfr ;k fopkjk l egkRek xk/kh vrjjk"Vh; fgnh fo'ofo|ky;] o/kk ;k l;ktd&likndk dh lgefr vfuok; ugh gA

अनुक्रम

विरासत

संस्मरण

- स्नेह भरी ऊँगली – अनुपम मिश्र 04

विमर्श

- दलित साहित्य के पुरोहित – ओमप्रकाश वाल्मीकि....................................... 08

आलेख

- नागार्जुन की कविता में सामाजिक प्रतिरोध – अमित कुमार 11
- वैश्वीकरण और मानवीय मूल्यों का आधुनिक परिदृश्य – ईश शक्ति सिंह 13
- अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का संक्षिप्त परिचय – प्रवेश कुमार द्विवेदी 15
- अमेरिकी चुनाव में भारतवंशी अमेरिकी – अभिषेक त्रिपाठी 18
- भाषा और मनुष्य की अस्मिता – यदुवंश यादव 21
- मीडिया एकाधिकार की चुनौतियाँ और नियमन के सवाल – भवानी शंकर 24
- रवि की धीमी उड़ानः मानसिक मंदता के विशेष संदर्भ में – निलामे गजानन सूर्यकांत 28
- उत्तर आधुनिक हिन्दी रंगमंच – सतीश पावड़े 31
- हिन्दी की लिंग व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन – अम्ब्रीश त्रिपाठी एवं आम्रपाल शेंदरे 34
- संस्कृति साहित्य में दूतकाव्य की परंपरा – सुधा त्रिपाठी 40

कविता

- पंजाबी कवि मोहनजीत की कविताएँ – अनु. हरप्रीत कौर 45
- निर्दोश चुनरी – सुधीर कुमार 51
- मैं हारी नहीं – दीपमाला 52

पुस्तक समीक्षा

- खास मौकों पर उद्योग तो, सुविधा देखकर चौथा खंभा बन जाता है मीडिया – मनीष कुमार जैसल 53

विरासत

स्नेह भरी उँगली

अनुपम मिश्र

थोड़ा बहुत लिखना–पढ़ना पिताजी से ही सीखा पर उन पर कभी कुछ लिखा नहीं। उन्हें गए आज 27 बरस हो रहे हैं, लेकिन उनके बारे में कभी 27 शब्द भी नहीं लिखे।

कारण कई थे। पहला तो वे खुद थे। कुछ के लिए वे जरूर 'गीतफरोश' रहे होंगे, पर हमारे लिए तो वे बस पिता थे। हर पिता पर उसके बेटे–बेटी कुछ लिखें – यह उन्हें पसंद नहीं था। कुल मिला कर हम सब के मन में भी यह बात ठीक उतर गई थी। मन्ना ने एकाध बार बहुत ही मजे–मजे में हमें बताया था कि कोई भी पिता अमर नहीं होता। पिता के मरते ही उसके बेटे–बेटी उनकी याद में कोई स्मारिका छाप बैठें, खुद लेख लिखें, दूसरों से लिखाते फिरें, उनकी स्मृति को स्थायी रूप देने हेतु उनके नाम से कोई संस्था, संगठन खड़ा कर दें – यह सब बिलकुल जरूरी नहीं होता। उनकी मृत्यु के बाद हमने इस बात को पूरी तरह निभाया, न खुद लिखा, न लिखवाया।

दूसरा कारण उनकी एक कविता थी – 'कलम अपनी साध, मन की बात बिलकुल ठीक कह एकाध।' तो मन की बात ठीक एकाध कभी सूझी नहीं। सूझी भी तो मन्ना की शर्त 'तेरी भर न हो' लागू करने के बाद कभी कुछ ऐसा बचता नहीं था लिखने लायक।

हम सब उन्हें मन्ना कहते थे। भाषा को बिगाड़ने का कुछ पाप जिन संबोधनों से लगता हो, वैसे संबोधन पिता के लिए तब प्रचलित नहीं हुए थे। लेकिन तब के नाम बाबूजी, पिताजी, बाबा आदि से भी हम और वे बच गए थे। खूब बड़े भरे–पूरे परिवार में मँझले भाई थे। पिताजी के बड़े भाई उन्हें प्यार से सिर्फ 'मँझले' कहते और फिर दादा–दादी से ले कर सभी छोटे बहन–भाई, यानी हमारे चाचा, बुआ आदि भी उन्हें आदर से 'मँझले भैया' ही कहने लगे थे। मुझसे बड़े दो भाई सन 1942 में जब पिताजी को पुकारने लायक उम्र में आ रहे थे कि वे जेल चले गए। जेल में लिखी उनकी कविता 'घर की याद' में इस भरे–पूरे परिवार का, उसके स्नेह का, आँखें गीली करने लायक वर्णन है। दो–तीन बरस बाद जब वे जेल से छूट कर लौटने वाले थे, तब ये दोनों बेटे अपने पिता को किस नाम से पुकारेंगे – इस बारे में नरसिंहपुर (मध्य प्रदेश) के घर में बुआओं, चाचाओं में कुछ बहस चली थी। पर जब पिता सामने आ कर अचानक खड़े हुए, संबोधन कूद के पार कर लिए थे और सहज ही 'मँझले भैया' कह कर उनकी तरफ दौड़ पड़े थे। दोनों बच्चों को कुछ सलाह, निर्देश भी दिए गए थे। बेटों के लिए भी वे 'मँझले भैया' बने रहे।

फिर जन्म हुआ मुझसे बड़ी बहन नंदिता का। जीजी से 'मँझले भैया' कहते बना नहीं, उनने उसे अपनी सुविधा के लिए 'मन्ने भैया' किया। फिर मन्ने भैया और थोड़ा घिस कर चमकते–चमकते 'मन्ने' और अंत में 'मन्ना' हो गया। जब मेरा जन्म 1948 में वर्धा में हुआ तब तक पिताजी जगत मन्ना बन चुके थे – सिर्फ हमारे ही नहीं, आस–पड़ोस और बाहर के छोटे–से लेकिन आत्मीय जगत के।

बचपन की यादें कोई खास नहीं। शायद घटनाएँ भी खास नहीं रही होंगी – उस दौर में एक साधारण पिता के जो संबंध साधारण तौर पर अपने बच्चों से रहते हैं, ठीक वैसे ही संबंध हमारे परिवार में रहे होंगे।

मेरे जन्म के बाद हम सब वर्धा से हैदराबाद आ गए थे। वे दिन हमारे लिए यह सब जानने–समझने के थे नहीं कि मन्ना कहाँ क्या काम करते हैं। पर एक बार वे घर से कुछ ज्यादा दिनों के लिए बाहर कहीं चले गए थे। तब शायद मैं पहली कक्षा में पढ़ता था। वे तब मद्रास गए थे। लौटे तो उनके साथ एक सुंदर चमकीला चाकू आया था। मन्ना को सब्जी काटने का खूब शौक था। सब्जी खरीदने का भी यह शौक कभी–कभी अम्मा की परेशानी में बदल जाता। ढेर के ढेर उठा लाते क्योंकि बेचनेवाली का बच्चा छोटा था, वह सब कुछ बेच जल्दी घर लौट सकती थी। बचपन में हम ने उन्हें न तो कविता लिखते देखा, न पढ़ते–सुनाते। मद्रास के उस स्टील के चाकू से खूब मजा ले कर सब्जी काटते थे – इसकी हमें याद बराबर है।

यह दौर था जब वे मद्रास में ए.वी.एम. फिल्म कंपनी के लिए कुछ गीत और संवाद लिखने गए थे। सब्जी खरीदने में बहुत ही प्रेम से भाव–ताव करने वाले मन्ना ए.वी.एम. के मालिक चेट्टियार साहब से अपने गीत बेचते समय कोई भाव–ताव नहीं कर पाए थे। गीत बेचने की इस उतावली में उनका लक्ष्य पैसा कमाना नहीं बल्कि कुछ पैसा जुटा लेना भर था। बड़े परिवार में दो–तीन बुआओं का विवाह करना था।

रजतपट के उस प्रसंग में उन पर कुछ कीचड़ भी उछला होगा। उसी दौर में उन्होंने 'गीतफरोश' कविता लिखी थी। हमने तब घर में रजतपट के चमकीले किस्से कभी सुने नहीं। किस्से सुने ए.वी.एम. के होटल के जहाँ रोज इतनी सब्जी कटती थी कि अच्छे से अच्छे चाकू कुछ ही दिनों में घिस जाते थे, फिर फिंका जाते थे। रजतपट की सारी चमक हमारे घर में इसी चाकू में समा कर आई थी मद्रास से।

चेट्टियार साहब से किसी विवाद के बाद वे गीत बेचने की दुकान बढ़ा कर घर लौट आए। 'गीतफरोश' में किसिम–किसिम के गीतों में एक गीत 'दुकान से घर जाने' का भी है। शायद जब वे तरह–तरह के गीत बेच रहे थे, तब उनके मन में घर आने का गीत 'ग्राहक' की मर्जी से बँधा नहीं था।

ए.वी.एम. की वे फिल्में, जिनमें मन्ना ने गीत और संवाद लिखे थे, डिब्बे में बंद नहीं हुईं। वे हैदराबाद के सिनेमाघरों में भी आई होंगी, पर मन्ना ने उन्हें अपनी उपलब्धि नहीं माना। हम लोगों को, अम्मा को सजधज कर उन्हें दिखा लाने का कभी प्रस्ताव नहीं रखा। शायद उनके लिए ये गीत 'मरण' के थे, फिल्मी दुनिया में रमने के नहीं, मरने के गीत थे।

साहित्य में रुचि रखनेवालों के लिए मन्ना का वह दौर प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' का दौर था। पर हम बच्चों की कल्पना कुछ और ही थी। घर में कभी शराब नहीं आई पर हैदराबाद में हम शराब के ही घर में, मुहल्ले में रहते थे। मुहल्ले का नाम था, टकेरवाड़ी। चारों तरफ अवैध शराब बनती थी। उसे चुआने की बड़ी–बड़ी नादें यहाँ–वहाँ रखी रहती थीं। यों हमारे मकान मालिक जिन्हें हम बच्चे शीतल भैया मानते थे, खुद इस धंधे से एकदम अलग थे पर चारों तरफ इसी धंधे में लगे लोग छापा पड़ने के डर से कभी–कभी कुछ सामान, नाद आदि हमारे घर के पिछवाड़े में पटक जाते। चार–पाँच बरस के हम भाई–बहनों की क्या ऊँचाई रही होगी तब। हम इन नादों में छिपकर तब की ताजा कहानी 'अली बाबा और चालीस चोर ' का नाटक खेल डालते थे।

कभी–कभी मन्ना हमें बदरी चाचा (श्री बदरीविशाल पित्ती) के घर ले जाते। घर क्या, विशाल महल था। शतरंज के दो बित्ते के बोर्ड पर सफेद–काले रंग का जो सुंदर मेल हमने कभी अपने घर में देखा, वह यहाँ बदरी चाचा के पूरे घर में, आँगन में, कमरों के फर्श में सभी जगह पूरी भव्यता से फैला मिलता। बदरी चाचा के घर ऐसे मौकों पर बड़े–बड़े लोग जुटते थे, पर हम उन सबको उस रूप में पहचानते नहीं थे। बदरी चाचा सचमुच विशाल थे हम सब के लिए। कभी–कभी वे हम सब को हैदराबाद से थोड़ी दूर बसे शिवरामपल्ली गाँव ले जाते। वहाँ तब विनोबा का भूदान आंदोलन शुरू हुआ था। बदरी चाचा अच्छे फोटोग्राफर भी थे। उस दौर में उनके द्वारा खींचे गए चित्र आज भी हमारे मन पर ज्यों के त्यों अंकित हैं – कागजवाले प्रिंट जरूर कुछ पीले–भूरे और धुँधले पड़ गए हैं।

मन्ना कविता लिखते थे, पढ़ने भी लगे थे, शायद रेडियो पर भी। लेकिन हमें घर में कभी इसकी जानकारी मिली हो – ऐसा याद नहीं आता। तब तक घर में रेडियो नहीं आया था। हैदराबाद रेडियो स्टेशन से हर इतवार सुबह बच्चों का एक कार्यक्रम प्रसारित होता था। हम एकाध बार वहाँ मन्ना के साथ गए थे। ऐसे ही किसी इतवार को नन्दी जीजी ने लकड़हारे की कहानी माइक के सामने सुना दी थी। जिस दिन उसे प्रसारित होना था, उसके एक दिन पहले मन्ना एक रेडियो खरीद लाए थे। रेडियो सेट मन्ना की कविता के लिए नहीं, जीजी की कहानी सुनाने के लिए घर में आया था – इसे आज रेडियो में ही काम करनेवाली नंदिता मिश्र भूली नहीं हैं।

हैदराबाद से मन्ना आकाशवाणी के बंबई केंद्र में आ गए थे। तब मैं तीसरी कक्षा में भर्ती किया गया था। उस स्कूल में हमें दूसरों से, अध्यापकों के व्यवहार से पता चला था कि हमारे पिताजी को घर से बाहर के लोग भी जानते हैं। क्यों जानते हैं? क्योंकि वे कविताएँ लिखते हैं। हमारे मन्ना कवि हैं!

कवि कालदर्शी होता है? हमें नहीं मालूम था। कल क्या होगा बच्चों का, उनकी पढ़ाई–लिखाई कैसी करनी है – बहुत ही बड़े माने गए ऐसे प्रश्न हमारे कवि पिता ने कभी सोचे नहीं होंगे। जब एक शाम मैं और नन्दी स्कूल से घर लौटे थे तो मन्ना ने हमें बताया कि अगले दिन हम सब बंबई से बेमेतरा जाएँगे। बड़े भैया के पास। मन्ना के बड़े भैया मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले की एक छोटी–सी तहसील बेमेतरा में तब तहसीलदार थे। हम सब बेमेतरा जा पहुँचे। दो–चार दिन बाद पता चला कि मन्ना और अम्मा वापस बंबई लौट रहे हैं और अब हम यहीं बेमेतरा में बड़े भैया के पास रह कर पढ़ेंगे। हैदराबाद में एक बार सीढ़ियों से गिरने पर काफी चोट लगने से मैं खूब रोया था। तब के बाद अब की याद है – बेमेतरा में खूब रोया, उनके साथ वापस बंबई लौटने को। आँखें तो उनकी भी गीली हुई थीं पर हम वहीं रह गए, मन्ना–अम्मा लौट गए। ताऊजी यानी बड़े भैया का प्यार मन्ना से बड़ा ही निकाला। यह तो हमें बहुत बाद में पता चला कि बड़े पिताजी के छह में से पाँच बेटे बड़े हो कर कॉलेज हॉस्टल आदि में चले गए थे और उन्हें अपना घर सूना लगने लगा था, इसलिए उस सूने घर में रौनक लाने के लिए मँझले भाई मन्ना ने हम दोनों को उन्हें सौंप दिया था।

बंबई से मन्ना दिल्ली आकाशवाणी आ गए। तब हम भी एक

गर्मी में बेमेतरा से शायद चौथी–पाँचवीं की पढ़ाई पूरी कर दिल्ली बुला लिए गए। हैदराबाद, बंबई की यादें धुँधली–सी ही थीं। बेमेतरा छोटा कस्बा था और बड़े भैया सरकार के बड़े अधिकारी थे, इसलिए बाजार आना–जाना, खरीददारी, डबलरोटी – ऐसे विचित्र अनुभवों से हम गुजरे नहीं थे। दिल्ली आने पर मन्ना के साथ घूमने, खुद चीजें खरीदने के अनुभव भी जुड़े। एक साधारण, ठीक माने गए स्कूल रामजस में उन्होंने मुझे भरती किया। सातवीं–आठवीं–नौवीं में विज्ञान में नंबर थे। इसी बीच उन्हें सरकारी मकान किसी और मुहल्ले में मिल गया। शुभचिंतकों के समझाने पर भी मन्ना ने मेरा स्कूल फिर बदल दिया – नए मुहल्ले सरोजनी नगर में टेंट में चलनेवाले एक छोटे–से सरकारी स्कूल में। यह घर के ठीक पीछे था। पैदल दूरी। 'बच्चा नाहक दिल्ली की ठंड–गर्मी में आठ–दस मील दूर के स्कूल में बसों में भागता फिरे ' यह उन्हें पसंद नहीं था। यहाँ विज्ञान भी नहीं था। मैं कला की कक्षा में बैठा। मुझे खुद भी तब पता नहीं था कि विज्ञान मिलने न मिलने से जीवन में क्या खोते हैं – पाते हैं। यहीं नौवीं में हिन्दी पढ़ाते समय जब किसी एक सहपाठी ने हमारे हिन्दी के शिक्षक को बताया कि मैं भवानी प्रसाद मिश्र का बेटा हूँ तो उन्होंने उसे 'झूठ बोलते हो' कह दिया था। बाद में उनने मुझसे भी लगभग उसी तेज आवाज में पिता का नाम पूछा था। घर का पता पूछा था, फिर किसी शाम वे घर भी आए। अपनी कविताएँ भी मन्ना को सुनाईं। मन्ना ने भी कुछ सुनाया था। उस टेंटवाले स्कूल में ऐसे कवि का बेटा? मन्ना की प्रसिद्धि हमें इन्हीं मापदण्डों, प्रसंगों से जानने मिली थीं।

श्री मोहनलाल वाजपेयी यानी लालजी कक्कू मन्ना के पुराने मित्र थे। मन्ना ने उनके नाम एक पूरी पत्रनुमा कविता लिखी भी। बड़ा भव्य व्यक्तित्व। शांति निकेतन में हिन्दी पढ़ाते थे। शायद सन 1957 में वे रोम विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की स्थापना करने बुलाए गए थे। वहाँ से जब वे दिल्ली आए, एक बार तो एक बहुत ही सुंदर छोटा–सा टेपरिकॉर्डर लाए थे मन्ना के लिए। नाम था जैलेसी यानी ईर्ष्या। उसमें छोटे स्पूल लगते थे। उन दिनों कैसेटवाले टेप चले नहीं थे। शहर का न सही, शायद मुहल्ले का तो यह पहला टेपरिकॉर्डर रहा ही होगा! इसका हमारे मन पर बहुत गहरा असर पड़ा था। विज्ञान के आगे मैंने तो माथा ही टेक दिया था। क्या गजब की मशीन थी। हर किसी की आवाज कैद कर ले, फिर उसे ज्यों का त्यों वापस सुना दे! शायद लालजी कक्कू ने यह यंत्र इसलिए दिया था कि मन्ना इस पर कभी–कभी अपना काव्य पाठ रिकार्ड करेंगे। पर वैसा कभी हो नहीं पाया। एक तो ऐसे यंत्र चलाने में उनकी दिलचस्पी नहीं थी, और फिर अपनी कविता खुद बटन दबा कर रिकार्ड करना, उसे खुद सुनना, दूसरों को सुनाना – उन्हें पसंद नहीं था। बाद में हमारे एक बड़े भाई बंबई से वास्तुशास्त्र पढ़ कर जब दिल्ली आए तो जैलेसी पर मुकेश, किशोर कुमार और लता के गाने जरूर जम गए थे। आज भी हमारे घर में मन्ना की एक भी कविता का पाठ रिकार्ड नहीं है। कभी–कभी नितांत अपरिचित परिवार में परिचय होने के बाद सन्नाटा, गीतफरोश, घर की याद, सतपुड़ा के घने जंगल आदि कविताओं के पाठ की रिकार्डिंग हमें सुनने मिल जाती हैं। ये कविताएँ उन शहरों में मन्ना ने पढ़ी होंगी। वहीं वे रिकार्ड कर ली गईं। हमें ऐसे मौकों पर लालजी कक्कू के जैलेसी की याद जरूर आ जाती है, पर ईर्ष्या नहीं होती।

कविकर्म जैसे शब्दों से हम घर में कभी कहीं टकराए नहीं। मन्ना कब कहाँ बैठ कर कविता लिख लेंगे – यह तय नहीं था। अक्सर अपने बिस्तरे पर, किसी भी कुर्सी पर एक तख्ती के सहारे उन्होंने साधारण से साधारण चिट्ठों पर, पीठ कोरे (एक तरफ छपे) कागजों पर कविताएँ लिखीं थीं। उनके मित्र और कुछ रिश्तेदार उन्हें हर वर्ष नए साल पर सुंदर, महँगी डायरी भी भेंट करते थे। पर प्रायः उनके दो–चार पन्ने भर कर वे उन्हें कहीं रख बैठते थे। बाद में उनमें कविताओं के बदले दूध का, सब्जी का हिसाब भी दर्ज हो जाता, कविता छूट जाती। भेंट मिले कविता संग्रह उन्हें खाली नई डायरी से शायद ज्यादा खींचते थे। हमें थोड़ा अटपटा भी लगता था पर उनकी कई कविताएँ दूसरों के कविता संग्रहों के पन्नों की खाली जगह पर मिलती थीं। पीठ कोरे पन्नों से मन्ना का मोह इतना था कि कभी बाजार से कागज खरीद कर घर में आया हो – इसकी हमें याद नहीं। फिर यह हम सब ने भी सीख लिया था। आज भी हमारे घर में कोरा कागज नहीं आता।

परिचित–अपरिचित, पाठक, श्रोता, रिश्तेदार – उनकी दुनिया बड़ी थी। इस दुनिया से वे छोटे–से पोस्टकार्ड से जुड़े रहते। पत्र आते ही उसका उत्तर देते। कार्ड पूरा होते ही उसे डाक के डिब्बे में डल जाना चाहिए। हम आसपास नहीं होते तो वे खुद उसे डालने चल देते। फोन घर में बहुत ही बाद में आया। शायद सन 1968 में। इन्हीं पोस्टकार्डों पर वे संपादकों को कविताएँ तक भेज देते।

बचपन से ले कर बड़े होने तक मन्ना को किसी से भी अंग्रेजी में बात करते नहीं देखा, सुना। जबलपुर में शायद किसी अंग्रेज प्रिंसिपलवाले तब के प्रसिद्ध कालेज राबर्टसन से उन्होंने बी.ए. किया था। फिर आगे पढ़े नहीं। लेकिन अंग्रेजी खूब अच्छी थी। घर में अंग्रेजी साहित्य, अंग्रेजी कविताओं की पुस्तकें भी उनके छोटे–से संग्रह में मिल जाती थीं। पर अंग्रेजी का उपयोग हमें याद नहीं आता। बस एक बार संपूर्ण गांधी वांङ्मय के मुख्य संपादक किसी प्रसंग में घर आए। वे

दक्षिण के थे और हिन्दी बिलकुल नहीं आती थी उन्हें। मन्ना उनसे काफी देर तक अंग्रेजी में बात कर रहे थे – हमारे लिए यह बिलकुल नया अनुभव था। दस्तखत, खत–किताबत सब कुछ बिना किसी नारेबाजी के, आंदोलन के – उनका हिन्दी में ही था और हम सब पर इसका खूब असर पड़ा। घर में, परिवार में प्रायः बुंदेलखंडी और बाहर हिन्दी – हमें भी इसके अलावा कभी कुछ सूझा भी नहीं। हमने कभी कहीं भी हचक कर, उचक कर अंग्रेजी नहीं बोली, अंग्रेजी नहीं लिखी।

कोई भी पतन, गड्ढा इतना गहरा नहीं होता, जिसमें गिरे हुए को स्नेह की उँगुली से उठाया न जा सके – एक कविता में कुछ ऐसा ही मन्ना ने लिखा था। उन्हें क्रोध करते, कड़वी बात करते हमने सुना नहीं। हिन्दी साहित्य में मन्ना की कविता छोटी है कि बड़ी है, टिकेगी या पिटेगी, इसमें उन्हें बहुत फँसते हमने देखा नहीं। हां अंतिम वर्षों में कुछ वक्तव्य वगैरह लोग माँगने लगे थे। तब मन्ना इन वक्तव्यों में कहीं–कहीं कुछ कटु भी हुए थे। एक बार मैं चाय देने उनके कमरे में गया था तो सुना कि वे किसी से कह रहे थे, 'मूर्ति तो समाज में साहित्यकार की ही खड़ी होती है, आलोचक की नहीं! '

हम उनके स्नेह की उँगली पकड़ कर पले–बढ़े थे। इसलिए ऐसे प्रसंग में हमें उन्हीं की सीख से खासी कड़वाहट दिखी थी। पर उन्हें एक दौर में गांधी का कवि तक तो ठीक, बनिए का कवि भी कहा गया तो ऐसे अप्रिय प्रसंग उनके संग जुड़ ही गए एकाध। फिर अपनी एक कविता में उन्होंने लिखा है कि 'दूध किसी का धोबी नहीं हैं। किसी की भी जिन्दगी दूध की धोई नहीं है। आदमकद कोई नहीं है।' कवि के नाते उनका कद क्या था – यह तो उनके पाठक, आलोचक ही जानें। हम बच्चों के लिए तो वे एक ठीक आदमकद पिता थे। उनकी स्नेह भरी उँगली हमें आज भी गिरने से बचाती हैं।

साभार : hindisamay.com

✦ ✦ ✦

विमर्श

दलित साहित्य के पुरोहित

ओमप्रकाश वाल्मीकि

हिंदी दलित साहित्य में कुछ ऐसी बहस करते रहने की परंपरा विकसित की जा रही है जिसका कोई औचित्य नहीं रह गया है। ये बहसें मराठी दलित साहित्य में खत्म हो चुकी हैं। लेकिन हिंदी में इसे फिर नए सिरे से उठाया जा रहा है। वह भी मराठी के उन दलित रचनाकारों के संदर्भ से, जो मराठी में अप्रासंगिक हो चुके हैं। जिनकी मान्यताओं को मराठी दलित साहित्य में स्वीकार नहीं किया गया, उन्हें हिंदी में उठाने की जद्दोजहद जारी है। मसलन 'दलित' शब्द को लेकर, 'आत्मकथा' को लेकर। मराठी के ज्यादातर चर्चित आत्मकथाकार, रचनाकार 'दलित', शब्द को आंदोलन से उपजा क्रांतिबोधक शब्द मानते हैं। बाबुराव बागुल, दया पवार, नामदेव ढसाल, शरणकुमार लिंबाले, लोकनाथ यशवंत, गंगाधर पानतावणे, वामनराव निंबालकर, अर्जुन डांगले, राजा ढाले आदि। इसी तरह आत्मकथा के लिए 'आत्मकथा' शब्द की ही पैरवी करनेवालों में वे सभी हैं जिनकी आत्मकथाओं ने साहित्य में एक स्थान निर्मित किया है। चाहे शरणकुमार लिंबाले (अक्करमाशी), दयापवार (बलूत), बेबी कांबले (आमच्या जीवन), लक्ष्मण माने (उपरा), लक्ष्मण गायकवाड़ (उचल्या), शांताबाई कांबले (माझी जन्माची चित्रकथा), प्र.ई. सोनकांबले (आठवणीचे पक्षी), ये वे आत्मकथाएँ हैं जिन्होंने दलित आंदोलन को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्मित की। इन आत्मकथाकारों को 'आत्मकथा' शब्द से कोई दिक्कत नहीं है। लेखकों को कोई परेशानी नहीं हैं। यही स्थिति हिंदी में भी है। लेकिन हिंदी में 'अपेक्षा' पत्रिका के संपादक डा. तेज सिंह को 'दलित' शब्द और 'आत्मकथा' दोनों शब्दों से ऐतराज है। उपरोक्त संपादक को दलित आत्मकथाओं में वर्णित प्रसंग भी काल्पनिक लगते हैं। कभी–कभी तो लगता है कि ये संपादक महोदय दलित जीवन से परिचित हैं भी या नहीं? क्योंकि दलित आत्मकथाओं में वर्णित दुख–दर्द, जीवन की विषमताएँ, जातिगत दुराग्रह, उत्पीड़न की पराकाष्ठा, इन महाशय को कल्पनाजन्य लगती है। उनके सुर में सुर मिलाकर आलोचक बजरंगबिहारी तिवारी को भी आत्मकथाओं के मूल्यांकन में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। वे कहते हैं कि, 'आत्मकथन क्योंकि आपबीती है, जिए हुए अनुभवों का पुनर्लेखन है, इसलिए उनकी प्रामाणिकता का सवाल प्राथमिक हो जाता है। क्या आत्मवृतों (आत्मकथाओं) की प्रमाणिकता जाँची जा सकती है? क्या उन्हें जाँचा जाना चाहिए? अगर हाँ तो क्या ये आत्मवृत (आत्मकथा) खुद को जाँचे जाने को प्रस्तुत हैं? क्या अभी तक कोई आंतरिक मूल्यांकन प्रणाली विकसित हो पाई है? हम कैसे तय करें कि कोई अनुभव–विशेष, कोई जीवन–प्रसंग कितना सच है और कितना अतिरंजित?' (अपेक्षा, जुलाई–दिसंबर, 2010, पृष्ठ–37)

बजरंग बिहारी तिवारी के ये सवाल कितने जायज हैं कितने नहीं? इसे पहले तय कर लिया जाए तो ज्यादा बेहतर होगा। क्योंकि यह सिर्फ लेखक की अभिव्यक्ति पर ही आक्षेप नहीं है, बल्कि इस विधा को भी खारिज करने का षड्यंत्र दिखाई दे रहा है। साथ ही यहाँ एक ऐसा सवाल भी उठता है कि क्या एक आलोचक लेखक का नियंता हो सकता है? इस सवाल के संदर्भ में कथाकार, संपादक महीप सिंह का कथन प्रासंगिक लगता है।

डा. महीप सिंह का कहना है कि 'हिंदी संसार के दो जातीय गुण हैं – जैसे ही कुछ सफलता और महत्ता प्राप्त करता है, वह एक मठ बनाने लगता है। कानपुर की भाषा में ऐसा व्यक्ति 'गुरू ' कहलाता है। साहित्य क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। थोड़ी–सी आलोचना शैली, थोड़ा–सा वक्तृत्व कौशल, थोड़ा–सा विदेशी साहित्य का अध्ययन, थोड़ी–सी अपने पद की आभा और थोड़ी–सी चतुराई से इस 'गुरुता' की ओर बढ़ा जा सकता है। कुछ समय में ऐसा व्यक्ति फतवे जारी करने के योग्य हो जाता है। एक दिन वह किसी के अद्वितीय का 'अ' निकाल कर और किसी के नाम के साथ जोड़ देता है।' (हिंदी कहानी : दर्पण और मरीचिका, हिंदुस्तानी जबान, अंक : अप्रैल–जून, 2011, पृष्ठ–15)

बजरंग बिहारी तिवारी के संदर्भ में यहाँ बात की जा रही है, वे सिर्फ इतने भर से ही नहीं रुकते वे और भी गंभीर आरोप लगाने लगते हैं। आरोपों की इस दौड़ में वे बेलगाम घोड़े की तरह दौड़ते नजर आते हैं। वे कहते हैं – 'विमर्श को चटकीला बनाने का दबाव, अपनी वेदना को 'खास' बनाने की इच्छा किन रूपों में प्रतिफलित होंगे?'

बजरंग बिहारी तिवारी अपनी अध्ययनशीलता और उद्धरण

देने की कला का दबाव बनाते हुए लुडविंग विट्गेंस्टाईन का संदर्भ देते हुए अपने तर्क को मजबूत करने की कोशिश करते हैं। अपने ही पूर्व लेखन और स्थापनाओं को खारिज करने का नाटक करते हैं। दलित साहित्य की महत्वपूर्ण विधा को यह आलोचक एक झटके में धराशायी करने का आखिरी दाँव चलता है। दलित आत्मकथाओं की बढ़ती लोकप्रियता और सामाजिक प्रतिबद्धता को किस दबाव के तहत नकारने की यह चाल है, यह जानना जरूरी लगने लगता है। वे अपनी 'गुरुता, ' जो बड़ी मेहनत और भाग दौड़ से हासिल की है, से आखिर फतवा जारी करने की कोशिश करते हैं – 'एक अर्थ में आत्मकथन अनुर्वर विधा है। वह रचनाकार को खालीपन का एहसास कराती है। अनुभव वस्तुतः रचनात्मकता के कच्चे माल के रूप में होते हैं... आत्मकथन में रचनात्मक दृष्टि के, विजन के निर्माण की न्यूनतम गुंजाइश होती है... एक विभ्रम की सृष्टि की आशंका भी इस विधा में मौजूद है।' (अपेक्षा, जुलाई–दिसंबर, 2010, पृष्ठ–37)

यहाँ बजरंग बिहारी तिवारी तथ्यों का सामान्यीकरण करने की कोशिश कर रहे हैं। दलित आत्मकथाओं ने समस्त भारतीय भाषाओं में अपनी रचनात्मकता से यह सिद्ध कर दिया है कि आत्मकथा अनुर्वर विधा नहीं है। न ही वह रचनाकार को खालीपन का एहसास ही कराती है। और इस बात को भी ये आत्मकथाएँ सिरे से नकारती हैं कि इस विधा में रचनात्मक दृष्टि के विजन की न्यूनतम गुंजाइश है।

आत्मकथाओं के संदर्भ में दया पवार कहते हैं – 'वर्तमान समय में मराठी की आस्वाद की प्रक्रिया एक जैसी नहीं है। सांस्कृतिक भिन्नता के कारण आस्वाद प्रक्रिया भी भिन्न–भिन्न हो रही है। यह दलित आत्मकथाओं का समय है; जिनकी काफी चर्चा रही है। परंतु इन आत्मकथाओं के मूल में जो सामाजिक विचार है, उसे सदैव नजरअंदाज किया जाता है। केवल व्यक्ति और व्यक्तिगत अनुभव – इसी बिंदु के चारों ओर इसकी चर्चा होती है।' आगे वे कहते हैं – 'दलितों का सफेदपोश पाठक अपने भूतकाल से बेचैन हो गया है। उसे खुद से शर्म महसूस होने लगी है। कचरे के ढेर में से कचरा ही निकलेगा? इस प्रकार के प्रश्न भी उन्होंने उपस्थित किए। वास्तविकता तो यह है कि यह केवल भूतकाल नहीं है। बल्कि आज भी दलितों का एक बडा समुदाय इसी प्रकार का जीवन जी रहा है। दलितों के सफेदपोश वर्ग को इसी की शर्म क्यों आ रही है? वास्तव में संस्कृति के संदर्भ में बड़ी–बड़ी बातें करनेवाली व्यवस्था को इसकी शर्म आनी चाहिए... कुछ लोगों को ये आत्मकथाएँ झूठी लगती हैं। सात समुंदर पार किसी अजनबी देश की आत्मकथाएँ, जिस जीवन को उन्होंने कभी देखा नहीं है, उनकी आत्मकथाएँ इन्हें सच्ची लगती हैं। परंतु गाँव की सीमाओं के बाहर का विश्व कभी दिखाई नहीं देता। इस दृष्टिभ्रम को क्या कहें। (दलितों के आंदोलन जब तीव्र होने लगते हैं, तब जन्म लेता है दलित साहित्य, अस्मितादर्श लेखक–पाठक सम्मेलन सोलापुर, 1983)

अक्सर देखने में आता है कि हिंदी आलोचकों की यह कोशिश रहती है कि दलित साहित्य के सामाजिक सरोकारों से इतर मुद्दों को ज्यादा रेखांकित किया जाए ताकि भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो। यह भटकाव कभी अपरिपक्वता के रूप में आरोपित होता है, तो कभी भाषा की अनगढ़ता के रूप में, तो कभी वैचारिक विचलन के रूप में आरोपित किया जाता है। कभी विधागत, तो कभी शैलीगत होता है।

किसी भी आंदोलन की विकास यात्रा में अनेक पड़ाव आते हैं। दलित साहित्य के ऐसे आलोचक दलित मुद्दों से हटकर वैश्विकता को ही दलित का सबसे बडा मुद्दा घोषित करने में लग जाएँ तो इसे क्या कहा जाए? क्या यह असली मुद्दों से बहकाने की साजिश नहीं होगी। क्योंकि ऐसे आलोचक इससे पूर्व भी यह काम बखूबी करने की कोशिश में लगे रहे हैं। लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। कभी दलित साहित्य में रोमानी रचनाओं की कमी का रोना रोते हैं, तो कभी प्रेम का, तो कभी दलित साहित्य को स्त्री विरोधी कहने में भी पीछे नहीं रहे हैं। उनकी ये घोषणाएँ नए लेखकों को भरमाने की कोशिश ही कही जाएँगी। क्योंकि हजारों साल का उत्पीड़न नए–नए मुखौटे पहन कर साहित्य को भरमाने का काम पहले भी करता रहा है। ये लुभावने और वाकचातुर्य से भरे हुए जरूर लगते हैं, लेकिन इनके दूरगामी परिणाम क्या होंगे इसे जानना जरूरी है। आंदोलन की इस यात्रा में भी ये पड़ाव आए हैं। इस लिए यदि नई पीढ़ी अपनी अस्मिता और संघर्षशील चेतना के साथ दलित चेतना का विस्तार करती है तो दलित साहित्य की एक नई और विशिष्ट निर्मिति होगी।

यहाँ यह कहना भी आवश्यक हो जाता है कि दलित साहित्य में आत्मकथाओं ने जिस वातावरण का निर्माण किया है। वह अद्‌भुत है। जिसे चाहे विद्वान आलोचक जो कहें, लेकिन दलित जीवन की विद्रूपताओं को जिस साहस और लेखकीय प्रतिबद्धता के साथ दलित आत्मकथाओं ने प्रस्तुत किया है, वह भारतीय साहित्य में अनोखा प्रयोग है। जिसे प्रारंभ से ही आलोचक अनदेखा करने की कोशिश करते रहे हैं। क्योंकि आत्मकथाओं ने भारतीय समाज–व्यवस्था और संस्कृति की महानता के सारे दावे खोखले सिद्ध कर दिए हैं। साथ ही साहित्य में स्थापित पुरोहितवाद, आचार्यवाद और वर्णवाद की भी जड़ें खोखली की हैं। साहित्यिक ही नहीं भारतीय संस्कृति की महानता पर भी प्रश्नचिह्न लगाए हैं और जिस गुरु की महानता से हिंदी साहित्य भरा पड़ा है उसे कटघरे में खड़ा करने का साहस सिर्फ दलित लेखकों ने किया है जिसे

बजरंग बिहारी तिवारी जैसे आलोचक सिरे से नकार कर अपनी विद्वता का परचम लहराकर आचार्यत्व की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। आत्मकथाओं की प्रमाणिकता पर भी आक्षेप करके पाठकों को दिग्भ्रमित करने का प्रयास कर रहे हैं। क्या उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता बदल गई है या 'गुरुता' भाव में लेखक का नियंता बनने की कोशिश की जा रही है? यह शंका जेहन में उभरती है।

यहाँ मेरा बजरंग जी से सीधा सवाल है, दलित साहित्य स्त्री विरोधी नहीं है। यदि कोई लेखक इस तरह के विचार रखता है तो आप उसे किस बिना पर दलित साहित्य कह रहे हैं? सिर्फ इस लिए कि वह जन्मना दलित है। मेरे विचार से दलित साहित्य की अंतःचेतना को पुनः देख लें। डा. अंबेडकर की वैचारिकता में कहीं भी स्त्री विरोध नहीं है और दलित साहित्य अंबेडकर विचार से ऊर्जा ग्रहण करता है। जिसे सभी दलित रचनाकारों ने, चाहे वे मराठी के हों या गुजराती, कन्नड़, तेलुगु या अन्य किसी भाषा के। यदि कोई जन्मना दलित स्त्री विरोधी है और जाति–व्यवस्था में भी विश्वास रखता है, तो आप उसे दलित लेखक किस आधार पर कह रहे हैं? यह दलित साहित्य की समस्या नहीं है, यह तो उस मानसिकता की समस्या है जो आप जैसे आचार्य विकसित कर रहे हैं।

समाज में स्थापित भेदभाव की जड़ें गहरी करने में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जिसे अनदेखा करते रहने की हिंदी आलोचकों की विवशता है और उसे महिमा मंडित करते जाने को अभिशप्त हैं। ऐसी स्थितियों में दलित आत्मकथाओं की प्रमाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगाने की एक सोची समझी चाल है बल्कि यह साहित्यिक आलोचना में स्थापित पुरोहितवाद है जो साहित्य में कुंडली मारकर बैठा है। हिंदी साहित्य को यदि लोकतांत्रिक छवि निर्मित करनी है तो इस पुरोहितवाद और गुरुडम से बाहर निकलना ही होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उस पर यह आरोप तो लगते ही रहेंगे कि हिंदी साहित्य आज भी ब्राह्मणवादी मानसिकता से भरा हुआ है। अपने सामंती स्वरूप को स्थापित करते रहने का मोह पाले हुए है। साभार : hindisamay.com

✦ ✦ ✦

आलेख

नागार्जुन की कविता में सामाजिक प्रतिरोध

अमित कुमार

हिन्दी साहित्य के काव्य सृजन की परंपरा भले ही अपने युग की परिस्थितियों से विमुख नहीं रही हो, किन्तु जनकवि नागार्जुन की अधिकांश कविताएँ तदयुगीन परिस्थितियों के चित्रण के साथ साथ उनका प्रतिरोध भी करती हैं। यह प्रतिरोधी प्रवृत्ति कवि को अन्य कवियों से पृथक एक नयी पहचान दिलाने का काम करती है। वैसे कवि का प्रतिरोध मुख्यतः राजनीतिक व्यवस्था के प्रति परिलक्षित होता है ,किन्तु इनकी अन्य विषयक काव्य रचनाओं में भी प्रतिरोध के स्वर दृष्टिगत होते हैं।

वस्तुतः नागार्जुन का गुस्सा ही इनका प्रतिरोध है. एक साक्षात्कार में बाबा से पूछा गया कि वे कविता कब लिखते हैं? उनका उत्तर था, जब गुस्सा आता है तब लिखता हूँ और जब मूड में होता हूँ। कवि जब गुस्से में आता है तो उसके अंदर 'विक्षोभ' रस की निष्पत्ति होती है। इस विक्षोभ को देखकर सुप्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पांडे ने एक लंबे निबंध का शीर्षक ही रख डाला–'नागार्जुन के यहाँ विक्षोभ रस'। इस विक्षोभ रस के बारे में बाबा स्वयं 'विषकीट' निबंध में लिखते हैं ''भारतीय काव्य की समीक्षा में नौ रस माने गए हैं परंतु अपने कटु तिक्तपरी रचना के सिलसिले में मुझे एक और ही रस की अनुभूति होने लगी है, वह है विक्षोभ रस" नागार्जुन का विक्षोभ ही उनके प्रतिरोध का मूल कारण बना. कवि का विक्षोभ व्यक्तिगत नहीं है, यह जनता की ओर से शोषकों के प्रति व्यक्त प्रतिशोध की चरम परिणति है। दरअसल हर समय की रचनात्मकता उस समय के दबावों के विरुद्ध एक प्रतिरोध कर रही होती है, फिर भी जिन बेहतर अर्थों में हम यहाँ नागार्जुन की कविताओं में प्रतिरोध के रेखांकन की बात कर रहे हैं, उनके लिए थोड़े ही सही पर सैद्धांतिक समझ के साथ व्याख्यात्मक अनुशीलन की आवश्यकता दिखाई देती है।

नागार्जुन का प्रतिरोध किसी एक वाद या किसी एक स्तर पर नहीं टिका हुआ है। निरंकुश सरकार के विरुद्ध प्रतिरोध का शंखनाद तो कवि ने किया ही, साथ साथ पारिवारिक–सामाजिक प्रतिरोध करने का भी अदम्य साहस दिखाया। उनका प्रतिरोध समाज की विसंगतियाँ जातिवाद,आडंबर आदि से ही नहीं, बल्कि अपने परिवार से भी है। वह कबीर की तरह अपना घर फूँक कर चलता है। कवि समाज में हो रहे अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह सबके साथ न्याय करता है तथा मौका मिलते ही अन्याय के विरुद्ध आवाज़ भी उठाता है। चाहे इनके घरवाले ही क्यों न हो, वह किसी को नहीं छोड़ता। निश्चय ही कवि की यह न्यायप्रियता एक स्वस्थ समाज का संधान करती है।

दरअसल नागार्जुन का विद्रोह सर्वप्रथम घर से ही शुरू हुआ। पितृद्वेष के कारण ही उन्होंने हिन्दू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाया था। घर छोड़ते समय जहां कवि को एक ओर अपनी जन्मभूमि की याद सताती है और मैथिली कविता 'अंतिम प्रणाम' लिखते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने पिता के विरुद्ध प्रतिरोध व्यक्त करते हैं। पिता पर उनका प्रतिरोध इन शब्दों में बरसता है –

''कर्मक फल भोगथु बूढ़ बाप
हम टा संतति, हे हुनक पाप"

वे लगाव को प्यार छलकाकर व्यक्त करते हैं और अलगाव को व्यंग्यमिश्रित क्रोध बरसाकर समाज में जब किसी परिवर्तन की सुगबुगाहट नहीं दिखती है, तो वे कभी बच्चों पर, कभी प्रकृति पर,कभी भारतेन्दु पर कभी नेवला – सूअर पर, कभी झण्डा पर तो कभी अंडा पर कविता लिखते हैं।

तत्कालीन समाज के विरुद्ध कवि का जो आक्रोश है वह विभिन्न संदर्भों में इनकी कविताओं में व्यक्त होता है। वह जिस समाज में रहते हैं, वहाँ मानवता की कोई बात नहीं की जाती है। हर मानव समाज से अपेक्षा रखता है कि मेरी समस्याओं को समाज अपने स्तर से समाधान करे। कवि का भोगा हुआ यथार्थ इस घटना की जीती जागती मिसाल है। उस समाज के बीच रहकर भी कवि को कोई आश्वासन नहीं मिलता। फलस्वरूप उनका प्रतिरोध इन शब्दों में फूट पड़ता है –

मानव होकर मानव के चरणों में रोया
दिन बागों में बिता रात को पटरी पर सोया

नागार्जुन के संवेदनशील हृदय ने समाज – सापेक्ष और जन–उन्मुख कविताएँ रची हैं। कवि ने समाज की गरीबी, अशिक्षा, भूख, अत्याचार और बेरोजगारी के बीच खुद खड़ा होकर प्रतिरोध का बिगुल फूंका। तत्कालीन समाज को बीमारू मुक्त बनाने का सघन प्रयास किया।

'हरिजन गाथा' कविता नागार्जुन ने 1977 में पटना

के करीब के गाँव बेलछी के नरसंहार पर लिखी थी। कविता की घोर पीड़ा को कवि नागार्जुन जितनी शिद्दत से महसूस करते हैं और उस वर्ग की मुक्ति के लिए जिस तरह के स्वप्न देखते हैं, वह विरल है। इस कविता में कवि कहता है कि उन बंधुआ मजदूर दलितों का अपराध इतना था कि उन्होंने अपनी मजदूरी बढ़ाने के लिए अपने मालिकों के सामने मुंह खोलने की जुर्रत की थी जिसके लिए उन्हें इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। इस दर्दनाक हादसे ने नागार्जुन को विचलित कर दिया। बार बार 'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था' की आवृत्ति में उनकी बेचैनी को साफ साफ देखा जा सकता है –

तेरह के तेरह अभागे/अंकिचन मनुपुत्र
जिंदाझोंक दिये गए हो
प्रचंड अग्नि की लपटों में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था'

उपर्युक्त प्रतिरोधी पंक्तियाँ तदयुगीन सामाजिक विसंगतियों की पोल खोलकर रख देती हैं निस्संदेह जातिभेद से जर्जर भारतीय समाज की व्यवस्था में दलित– जीवन की विडंबनाओं पर केन्द्रित यह कविता दलित चेतना का व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है। कवि दलित समाज की सोच को सामने लाता है।

कवि समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को गंभीरता से लेता है। वह समाज के प्रति अपने लगाव को डंके की चोट से कविता द्वारा अभिव्यक्त करता है। उसे बखूबी निभाने और उससे जुड़े रहने के लिए प्रतिबद्ध भी रहता है। अपनी एक कविता 'प्रतिबद्ध हूँ' में उन्होंने दो टूक लहजे में अपनी दृष्टि को स्पष्ट किया है –

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
'''
अविवेकी भीड़ की भेड़िया धसान के खिलाफ
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ

उपरोक्त कथन में जहां एक ओर कवि ने समाज के प्रति प्रगाढ़ संबंध स्थापित किया है वहीं दूसरी ओर समाज के अविवेकी अर्थात मूर्ख व्यक्तियों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। कवि का बहुजन समाज के प्रति अद्भुत लगाव है। वह पिछड़ो, गरीबों, दलितों तथा हाशिए के लोगों को बहुजन की संज्ञा देता है, साथ साथ उनके प्रति अटूट प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है। कहीं न कहीं तदयुगीन समाज की टीस को जनकवि नागार्जुन ने बड़ी निकटता और गंभीरता से महसूस किया है।

किसानों और जमींदारों के बीच कृषि–संबंधी अंतर्विरोधों और जमींदारों के शोषण–तंत्र में फैली कूटनीति की सच्चाई के प्रति जितनी गहरी समझ नागार्जुन की है, उतनी गहरी समझ शायद प्रेमचंद के अलावे किसी में नहीं होगी। नागार्जुन जानते हैं कि जिन खेतों में दिन रात मेहनत करते करते गरीबों ने अपनी कमर तोड़ ली हैं, वे खेत भी उनसे छिन लिए गए हैं। गरीबों के ऊपर हो रहे तमाम जुल्मों का कवि पुरजोर विरोध करता है। जमींदारों, साहूकारों और बनियों व्यापारियों पर वे अपनी 'सच न बोलना' कविता के माध्यम से इसप्रकार आक्रोश व्यक्त करते हैं –

जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी है
अंदर अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है

दरअसल नागार्जुन ने समाज के साहूकारों, बनियों, जमींदारों एवं व्यापारियों की मनः स्थिति को भाँप लिया था। तमाम चाटुकारों के विरुद्ध अपनी कविता में प्रतिरोध व्यक्त किया। वे सामाजिक अव्यवस्था के प्रति व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि सभी के सभी एक ही म्यान की तलवारें हैं। इन प्रतिरोधों की गूंज कवि की कविताई में सुनने को मिलती है।

नागार्जुन को हर प्रकार की अमानवीयता पर मूलभूत रोष है, उनका यह रोष उनकी कविता में सर्वत्र व्याप्त है. वह कहीं व्यंग्य में ढलकर व्यक्त हुआ है, कहीं चुनौती और ललकार के स्वर में प्रकट हुआ है। नागार्जुन को जितनी घृणा वर्तमान समाज व्यवस्था से है, वे उतने ही जोरदार तरीके से उस पर व्यंग्य करते हैं।

नागार्जुन का सामाजिक प्रतिरोध पूर्णत समाज की अव्यवस्था–विषमता को बदलकर न्याय और समता पर आधारित समाज की ओर उन्मुख करता है। नागार्जुन की काव्य चेतना का यह अत्यंत प्रबल पक्ष है कि वे श्रमिक जनता से तादात्म्य स्थापित करते हैं। भोली भाली जनता को इनके नाम पर दिग्भ्रमित करने का खेल किस तरह समाज के ठेकेदार खेलते हैं, नागार्जुन इससे भली–भांति परिचित हैं। जनता के प्रति कवि की हमदर्दी जनता के स्वीकार, समर्थन, और सुधार की उम्मीदों से जुड़ी है। सामाजिक प्रतिरोधों का इतना तीखा प्रहार हिन्दी पट्टी में शायद ही नागार्जुन के अलावे अन्य कवि ने किया हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नागार्जुन रचनावली*, भाग १, सं शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला, सं०–२००३, पहली आवृत्ति–२०११
2. वही, भाग २
3. *नागार्जुन की कविता*, अजय तिवारी, द्वितीय सं०२००५, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली
4. *अविराम काव्य यात्री नागार्जुन*, मीना कुमारी, सं– २०१३, शिल्पायन प्रकाशन, नयी दिल्ली

वैश्वीकरण और मानवीय मूल्यों का आधुनिक परिदृश्य

ईश शक्ति सिंह

सामाजिक परिवर्तन समाज की केंद्रीय अवधारणा हैं। जिसके द्वारा समाज की गत्यात्मकता को समझने का प्रयास किया जाता है। सामान्य रूप से किसी समाज की सामाजिक संरचना अथवा सामाजिक संगठन अथवा समाज के अन्य उपादानों में समय अन्तराल के साथ होने वाले बदलाव या परिष्करण की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन कहते है। यह बदलाव समाज की पूर्ववर्ती स्थिति एवं बाद की स्थिति में आए अन्तर को परिलक्षित करता है। सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो दुनिया के सभी समाजों में सदैव क्रियाशील रही है और जिसके अंतर्गत समाज की संरचना के विभिन्न अंगों के प्रकार्य, संबंध, संस्था, मूल्य व्यवस्था आदि में होने वाले परिवर्तन को शामिल किया जाता है। साथ ही, यह एक तटस्थ और व्यापक अवधारणा है जिसमें समाज का आमूल–चूल परिवर्तन (संरचना का परिवर्तन) और अति सामान्य परिवर्तन (संरचना में परिवर्तन) दोनों ही शामिल है। सामाजिक परिवर्तन की यह अवधारणा किसी समाज के व्यक्तियों में या किसी लघु समूह में हुए छिटपुट बदलावों की अपेक्षा वृहद् सामाजिक प्रणाली या सम्पूर्ण संबंधों की व्यवस्था के स्तर पर होने वाले बदलावों को इंगित करती है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में सामाजिक परिवर्तन की गति काफी तीव्र है। लगभग गत तीन दशकों से प्रचलन में आया 'वैश्वीकरण' शब्द आज पूरे विश्व में एक ऐसी आंधी है जिसने आधुनिकता एवं उत्तर–आधुनिकता को भी मात दे दी है। प्रारम्भ में आर्थिक सन्दर्भ में प्रयुक्त वैश्वीकरण की अवधारणा एल.पी.जी. अर्थात उदारीकरण, निजीकरण. एवं वैश्वीकरण की त्रयी का अंतिम एवं महत्वपूर्ण भाग बनी थी। बाद में जल्दी ही वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने अपना स्वायत्त रूप ऐसा बनाया कि उसकी दखल ने राजनीति, संस्कृति, समाज, तकनीकी, सूचना–तकनीकी, संचार–मीडिया, धर्म–संस्कार आदि को भी प्रभावित किया एवं इन सभी से वैश्वीकरण की प्रक्रिया प्रभावित भी होने लगी। अब तो सर्वत्र विश्व गाँव, विश्व नगर, विश्व दृष्टि, विश्व दिवस, विश्व बाजार आदि अनेक संदर्भ है जिनमें विश्व विश्लेषण लगाने से वैश्वीकरण की प्रक्रिया का परिणाम परिलक्षित होता है। पूरा संसार ही उत्पादक एवं उपभोक्ता बनता हुआ प्रतीत होता है। इसका आधार सूत्र तो हमें हमारे उपनिषदों में मिलता है जहाँ उदारवादी दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए पूरा संसार ही एक कुटुंब के समान कहा गया है। इसमें व्यक्तिवादी धारणा के स्थान पर सामूहिक धारणा ऐसी है जिसमें स्थान, क्षेत्र, देश, राज्य आदि की कोई सीमा अपना प्रभाव नहीं रखती है। किन्तु वर्तमान संदर्भ में वैश्वीकरण कुछ और ही अर्थ एवं भावार्थ पर आधारित है।

वैश्वीकरण उस वृहद् प्रक्रिया का नाम है जिसके द्वारा सम्पूर्ण विश्व के देशों या समाजों के सामाजिक संबंधों एवं उसकी अंतरनिर्भरता को गहराई से समझने में एक नई पहचान कायम की जा सके। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया को प्रारम्भ किया विविध देशों में खोले गए सुपर मार्केटों नं जहाँ पर दुनिया भर के कई देशों में चलने वाले सामानों की बिक्री इसलिए होने लगी कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा ने एक जोर पकड़ा एवं गुणात्मक उत्पादों के लाने में एक से एक वस्तुएं सामने लाई गई जिसे ग्राहकों–उपभोक्ताओं ने पसंद किया। इसी प्रकार आज के बाजारों में सैकड़ों देशों के उत्पाद एक साथ बिक्री के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। नए से नए उत्पाद आने लगे हैं जो कुछ वर्षों पूर्व अस्तित्व में ही नहीं थे। इस वैश्वीकरण ने संसार को देखने का तरीका बदला है एवं साथ ही, जिस तरीके से हम संसार को देखते हैं उसे भी बदल दिया है। वैश्वीकरण तो एक परिप्रेक्ष्य या नजरिया देता है कि हम दुनिया के अन्य समाजों के साथ कैसे संबंध एवं क्रिया रखें। विश्व के किसी भी क्षेत्र की समस्याएँ हमारे जीवन को प्रभावित कर सकती हैं। अतः वैश्वीकरण ऐसे नए विश्व परिदृश्य को स्थापित करता है जिससे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी संस्थागत क्षेत्रों में तीव्र बदलाव एवं विश्व समाजों की बढ़ती अंतरनिर्भरता दिखाई देती है।

इस वैश्वीकरण के प्रभाव से सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना में भी तेजी से बदलाव आता जा रहा है। समाज, सामाजिक मूल्य को अपना एक महत्वपूर्ण अंग मानता है। सामाजिक मूल्य वे मानक धारणाएं हैं जिनके आधार पर हम किसी व्यक्ति के व्यवहार, वस्तु के गुण, लक्ष्य, साधन एवं भावनाओं

आदि को उचित या अनुचित अच्छा या बुरा ठहराते हैं। सामाजिक मूल्य सामाजिक कल्याण एवं सामाजिक आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण समझे जाते हैं। सामाजिक मूल्य का निर्माण मानवीय मूल्यों के समन्वय या एकीकरण द्वारा बनता है। सामाजिक प्रमाप के समान मूल्यों का समाज में महत्व बहुत अधिक होता है। मूल्यों से सम्बन्धित होकर ही एक व्यक्ति सही अर्थों में मनुष्य बनता है। मूल्यों के आधार पर ही सामाजिक संगठन का विकास निम्न से उच्च स्तर की ओर होता है। ये मूल्य ही हैं जिनको प्राप्त कर मनुष्य अपने को सफल बनता है। व्यक्ति का समाजीकरण मूल्यों के अनुरूप ही होता है। इस प्रकार मूल्य व्यक्तित्व विकास के वास्तविक आधार होते हैं।

मूल्य ही निर्धारित करता है, समाज का स्वरूप कैसा होगा, संबंधों का स्वरूप एवं मानव का व्यवहार कैसा होगा। मूल्य, समाज व मानव के जीवन के रक्त हैं, अतः रक्त जैसा होगा जीवन वैसा होगा। समाज का परिवर्तन समय की मांग है उसके विकास एवं प्रगति के लिए, परन्तु सामाजिक परिवर्तन से मानवीय मूल्यों में प्रदूषण नहीं होना चाहिए अन्यथा मानवीय मूल्यों के प्रदूषण से समाज की संगठनात्मक इकाईयां भी प्रदूषित हो जाती हैं। वरन समाज का स्वरूप, मानवीय मूल्य विहीन रूप के समान प्रतीत होगा। वैश्वीकरण के दौर में सामाजिक परिवर्तन ने समाज को विकास व प्रगति का मार्ग तो प्रशस्त किया है परन्तु मानवीय मूल्य एवं सामाजिक मूल्य के विकास की तरफ ध्यान आकृष्ट करने में बाधा खड़ी कर रखी है।

वैश्वीकरण का प्रभाव विभिन्न देशों की स्थानीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं खेलकूद या मनोरंजन की परिस्थितियों पर भी देखने को मिलता है। हम में से हर एक को वैश्वीकरण से प्रभावित होता देखा जा सकता है। परिवार में बच्चों का जीवन, विद्यालय में विद्यार्थियों की शिक्षा आदि सभी को वैश्वीकरण ने प्रभावित किया है। परिवार में जहाँ सामूहिक मूल्यों, परम्पराओं, परिपाटियों के आधार पर निर्णय लिए जाते थे। विवाह के संबंध पवित्र एवं तुलनात्मक रूप से स्थाई होते थे, वहाँ आज सभी में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण एवं स्वार्थ और उपभोक्तावादी विचारों ने परिवार एवं विवाह की संस्थाओं को कमजोर किया है। इन सबका कारण है व्यक्तिवादिता की विचारधारा में बेहताशा वृद्धि। इसे प्रारम्भ में आधुनिकीकरण ने लोगों में अपने निजी स्वार्थ पर ही सम्पूर्ण ध्यान देने की भावना को बढ़ावा देते हुए आगे बढ़ाया था। वर्तमान में वैश्वीकरण ने भी इसी व्यक्तिवादिता को और अधिक प्रबल बनाया है। लोगों के जीवन पर परम्परा एवं प्रथाओं के आधार पर आगे बढ़ने का असर कम हैं। अब कैरियर की होड़ लगी है एवं व्यक्तिगत योग्यताओं, अनुभव एवं कुशलता के आधार पर पैकेज देकर व्यक्ति को कार्य करने का अवसर दिया जाता है।

व्यक्तिवाद का एक नया स्वरूप भी वैश्वीकरण ने उभरा है जिसमें लोग अपने आप तक सक्रिय रूप से केंद्रित होने लगे है एवं निजी पहचान अलग से बनाने की धारणा को अधिक महत्व देते हैं। इसमें परम्परागत मूल्यों एवं मानकों को पूर्ण रूप से दरकिनार कर दिया जाता है। जो सामाजिक मानदंड एवं मर्यादाएं व्यक्ति के व्यवहार पर दबाव रखती थी एवं उसे सामाजिक नियंत्रण में रहने के लिए प्रेरित करती थी, वे अब शिथिल एवं अप्रासंगिक बनती जा रही हैं। पहचान के परम्परागत आधारों के स्थान पर व्यक्तिगत शौक एवं योग्यताओं को आधार बनाया जाने लगा है। यह स्वयं की विशेषताओं का परावर्त प्रदर्शन है जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया से और बढ़ा है।

वैश्वीकरण के सामाजिक परिवर्तन ने मानव के सामने तराजू के एक पलड़े पर उसके प्रगति व विकास को रख रखा है तो दूसरे पलड़े पर सामाजिक मूल्यों को और देखा जा रहा है कि कहीं ना कहीं मानव अपने उन्नति व विकास के चक्कर में मूल्यों को छोड़ रहा है। मानव की यह एक आधुनिक मज़बूरी बनती जा रही है, मूल्यों को साथ लेकर चलने या उसे निभाने में। समाज या मानव, तकनीक के अनुरूप अपने को ढालता जा रहा है साथ ही मूल्यों से जुड़े आधार व संबंधों जैसे परिवार का बिखराव, पीढ़ियों में बढ़ता अन्तराल, संबंधों में औपचारिकता, जटिल सामाजिक संबंध, दिखावटीपन, कर्तव्यनिष्ठता की कमी, नातेदारी संबंधों में ढीलापन, पड़ोसी संबंधों में अनजानापन, मानव सम्पर्क में शंकापन इत्यादि में भी तकनीकी होता जा रहा है। जिससे इस प्रकार की समस्याओं से रूबरू होना पड़ रहा है। सामाजिक परिवर्तन को लेकर एक चर्चा मूल्यों को लेकर की जाती है कि क्या समाज के परिवर्तन में मानवीय मूल्यों का भी परिवर्तन होना आवश्यक है। बदलते समय में मूल्य को लेकर संकट गहराता जा रहा है। परिवर्तित दौर में मानव का व्यवहार व संबंध अपने आदर्शवादी मूल्यों को लेकर चुनौती की राह पर खड़ा है। इसका कारण आज के इस तेजी से बदलते समय ने मानव के अपने विकास के लिए कहीं ना कहीं मानवीय मूल्यों को हाशिए पर खड़ा करना है। ऐसे में आवश्यकता है मनुष्य को मनुष्यता को बचाएं रखने के लिए वह उस क्षमता को विकसित करे जिससे मानवीय मूल्यों को सुरक्षित व संरक्षित किया जा सके।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का संक्षिप्त परिचय

(Introduction of Computational Linguistics)

प्रवेश कुमार द्विवेदी

भाषा ही एक मात्र ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से मानव अपने दैनिक जीवन की समस्त क्रियाओं को संपन्न करता है और इस परिस्थिति में जब आज सूचना प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन के हर पल में एक जरूरी सामग्री का रूप धारण कर लिया है जिसके माध्यम से आज कम–से–कम अवधि में ज्यादा–से–ज्यादा कार्य पूर्ण किए जा रहे हैं, तब भाषा के बिना प्रौद्योगिकी भी अधूरी–सी हो जाती है और सूचना प्रौद्योगिकी के समस्त दरवाजे भी बंद हो जाते हैं। जब सूचना प्रौद्योगिकी में 'सूचना' शब्द का समावेश होता है तभी से 'प्राकृतिक भाषा' की भूमिका स्पष्ट हो जाती है और यह हम सब जानते है कि सूचना बिना किसी प्राकृतिक भाषा के संभव ही नहीं है। जिसे प्रौद्योगिकी में कोडीकृत अथवा डिकोडीकृत करके संदेश भेजा एवं प्राप्त किया जाता है और यह कहना बिल्कुल भी गलत न होगा कि जहां से प्राकृतिक भाषा के कोडीकरण अथवा डिकोडीकरण की बात उत्पन्न होती है वहीं से अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का अधिकार क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। अतः यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक हो जाता है कि आखिरकार अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान किसे कहते है?

प्राकृतिक भाषा हमारे दैनिक जीवन का अभिन्न अंग है, जिसके द्वारा मानव समुदाय आपस में विचार–विनिमय एवं सूचनाओं को संरक्षित करता है। भाषा द्वारा ही मानवीय समस्त विचार, योजना एवं कठिन सोच को व्यक्त करना संभव हो सका है। प्राकृतिक भाषा को समझने और प्रजनित करने हेतु अभिकलनात्मक (Computational) प्रणाली का एक अध्ययन अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान है, जिसके अंतर्गत विभिन्न ऐसी एक्सपर्ट प्रणाली का विकास करना है जिससे मानव–मशीन के बीच संवाद स्थापित किया जा सके अर्थात अभिकलन (Computer) मानवीय भाषा को समझ सके एवं प्रतिउत्तर में प्राकृतिक भाषा का उत्पादन कर सके। इसकी प्राथमिक प्रेरणा प्राकृतिक भाषा के लिए विशिष्ट व्यावहारिक प्रणालियों का विकास करना है। ऐसी प्रणालियों की संरचना तथा विभिन्न घटकों के लिए कलनविधियों की रूपरेखा तैयार करना अभिकलानात्मक भाषाविज्ञान की विशेष रूचि का विषय है। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान एक अंतरानुशासिक क्षेत्र विशेष का अध्ययन है जो प्रमुख रूप से तीन ज्ञान क्षेत्र भाषाविज्ञान, अभिकलनात्मक विज्ञान एवं तर्क का सम्मिलित विषय है। जिसके प्रमुख दो लक्ष्य हैं– पहला प्राकृतिक भाषा का विश्लेषण, प्रक्रम एवं संश्लेषण करना तथा दूसरा प्राकृतिक भाषा को अभिकलन के समझने योग्य बनाना।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का उद्देश्य है कि अभिकलन को भाषिक अभिव्यक्ति (लिखना, पढ़ना, सुनना एवं बोलना) से परिपूर्ण करना है। मशीन को भाषा की समझ स्थापित करने हेतु भाषावैज्ञानिक आधार पर भाषा के विभिन्न स्तर (जैसे– पद, पदबंध, वाक्य, प्रोक्ति एवं अर्थ) पर विश्लेषण एवं संश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। जिससे मशीन द्वारा भाषावैज्ञानिक कार्य (जैसे– अनुवाद) संसाधित पाठ (जैसे– पुस्तक, पत्रिका, समाचार–पत्र) आदि कार्य भी किया जाना संभव हो सके एवं मशीन में संग्रहित डाटा के द्वारा मानवीय कार्य को ज्यादा सरल और सहजता के साथ संपन्न किया जा सके एवं भाषा का प्रयोग करके उपयोगकर्ता अभिकलन को कैसे उपयोग करना है? को आसानी के साथ समझ सके।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का सैद्धांतिक पक्ष लक्ष्य भाषा की विशेषता के आधार पर व्याकरणिक नियम एवं अर्थीय संरचना को अभिकलन में स्थापित करने योग्य बनाने हेतु वाक्यात्मक एवं अर्थीय विश्लेषण, संसाधन, संश्लेषण करके ऐसी तकनीकी एवं सिद्धांतों की खोज करना है जो संरचनात्मक एवं अर्थीय दोनों स्तर पर भाषा की विशेषता को समाहित कर सके। इसके द्वारा संज्ञानात्मक विकास एवं तंत्रिकाविज्ञान के विकास, भाषा संसाधन व भाषा शिक्षण का मस्तिष्क में कार्य करने के तरीका का अध्ययन एवं विश्लेषण भी किया जा सकता है।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रायोगिक क्षेत्र विस्तृत एवं वृहद है। जिसके प्रमुख क्षेत्र इच्छित प्रसंग के अनुसार पाठ का सफल प्रत्यायन मशीनी अनुवाद, प्रश्नोत्तरीय प्रणाली, पाठ सारांशीकरण, पाठ–व–वाक् का विश्लेषण, अर्थविज्ञान, मनोवैज्ञानिक तथ्य, भाषा शिक्षण और पाठ से ज्ञान को प्राप्त करना आदि है। इसके अंतर्गत किसी भी प्राकृतिक भाषा का विश्लेषण एवं संश्लेषण करके भाषिक टूल्स का निर्माण किया

जाता है। किसी भी भाषिक टूल्स का निर्माण करने हेतु अभिकलन में भाषा को इनपुट किया जाता है एवं एक निश्चित संसाधन के पश्चात इच्छित आउटपुट प्राप्त किया जाता है। जिसमें प्राकृतिक भाषा के विभिन्न स्तर (स्वन, पद, पदबंध, वाक्य एवं प्रोक्ति) पर विश्लेषण एवं संश्लेषण करके किया जाता है। प्राकृतिक भाषा का विश्लेषण एवं संश्लेषण करके अभिकलन में स्थापित करने हेतु आवश्यक कलनविधि का निर्माण किया जाता है। प्राकृतिक भाषा समस्त प्रक्रिया इसी कलनविधि पर निर्भर करती है, जिसे संगणकीय मॉडल भी कहा जाता है। इसीप्रकार यह कहा जा सकता है कि संगणकीय मॉडल ही अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान की आधारभूत संकल्पना है, जिसके माध्यम से भाषा के नए आयामों एवं उपयोक्ता के आधार पर विभिन्न भाषिक टूल्स प्राप्त किए जा सकते हैं।

आज के युग में अभिकलन के बिना दैनिक जीवन के विभिन्न कार्य कठिन ही नहीं बल्कि मुश्किल हो गए है। आज हमारे दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले महत्वपूर्ण कार्य जैसे– संपूर्ण देश की वित्त व्यवस्था एवं सुरक्षा, एयरपोर्ट का नियंत्रण, अस्पताल, शहरीय यातायात, घरेलू कामकाज, घर का अर्थशास्त्र, मनोरंजन एवं शिक्षण आदि अभिकलन की सहायता से संपन्न किए जा रहे हैं। आज उक्त विभिन्न कार्य को एक अभिकलन उपयोगकर्ता के माउस क्लिक द्वारा संपन्न किया जाना संभव हुआ है। यद्यपि भविष्य में जब अभिकलन भाषिक क्षमता से युक्त हो जाएगा तब हमें माउस क्लिक करने भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी बल्कि मुंह से बोलकर कमाण्ड दिया जायेगा और मशीन दिए गए कमाण्ड के कार्य को पूर्ण करेगी। वस्तुतः इस क्षेत्र में थोड़ी–बहुत सफलता प्राप्त भी हुई है परंतु पूर्ण रूपेण अभी तक मशीन सभी कार्य संपन्न करने में सफल नहीं हुई है। मशीन को भाषिक क्षमता प्रदान करने की कई समस्याएं एवं कठिनाईयां उत्पन्न हो रही है जिनका निवारण कुछ हद तक संभव भी हुआ है और इस क्षेत्र में निरंतर शोध कार्य जारी है। मशीन को भाषिक क्षमता से युक्त कर मानव–मशीन के बीच संवाद स्थानपित करना ही अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का मुख्य विषय क्षेत्र है।

किसी भी विषय का परिभाषा देना एक कठिन कार्य होता है फिर भी इस विषय के बारे में पिछले तीन–चार दशको में विभिन्न विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है एवं उन्होंने इसके पक्ष में अपने–अपने विचार एवं परिभाषा को गढ़ने का कार्य भी किया है। जिनकी परिभाषाओं को यहां पर उल्लेखित करना आवश्यक हो जाता है, जो इसप्रकार हैः

राल्फ ग्रिसमैन के अनुसार : "Computational Linguistics is the study of computer system for understanding and generating natural language".

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार : "The branch of linguistics in which the techniques of computer science are applied the analysis and synthesis of language and speech".

हंश उस्जकोरिट (Hans Uszkoreit) के अनुसार : "Computational Linguistics is a discipline between linguistics and computer science which is concerned with the computational aspects of the human language faculty".

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो रहा है कि अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान एक अंतरानुशासिक विषय है जिसमें अभिकलन एवं भाषाविज्ञान दोनों ज्ञान के साथ–साथ तार्किकता का भी अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। यहां पर भाषाविज्ञान एक साधन के तौर पर एवं अभिकलन को एक साध्य के तौर पर प्रयोग किया जाता है। यहां पर अभिकलनात्मक विज्ञान एवं भाषाविज्ञान दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है, जहां बिना भाषावैज्ञानिक ज्ञान के अभिकलन में भाषा को स्थापित कर पाना मुश्किल है वहीं भाषाविज्ञान का भाषावैज्ञानिक अध्ययन एवं विश्लेषण करके प्रतिपादित नियम, संगणकीय मॉडल तथा निर्मित कलनविधि अधूरा रह जाएगा। अतः अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान एक स्वतंत्र अनुशासन है जो अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के समस्त अनुप्रयोग क्षेत्र के तर्कों एवं कलनविधियों पर आधारित है।

अभिकलनात्मक एवं सैद्धांतिक दोनों में ही भाषाविज्ञान साधन के रूप प्रयुक्त् हुआ है। एकतरफ जहां सैद्धांतिक भाषाविज्ञान में भाषावैज्ञानिक प्राकृतिक भाषा के विभिन्न आयामों एवं प्रकार्यों का वैज्ञानिक सिद्धांत प्रतिपादित कर कार्य एवं कारण का पता लगाते हैं, वहीं अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान में अभिकलनात्मक भाषावैज्ञानिक भाषाविज्ञान का व्याकरणसम्मत विश्लेषण कर नियमों का प्रतिपादन एवं कलनविधि का निर्माण करते हैं। दोनों में अध्ययन एवं विश्लेषण के अभिगम अलग–अलग प्रयोग किए जाते हैं। अभिकलनात्मक भाषावैज्ञानिक प्राकृतिक भाषा को इनपुट करके विश्लेषण, संसाधन एवं संश्लेषण कर संगणकीय मॉडल का विकास करते हैं। जहां संगणकीय मॉडल के विकास हेतु समस्त, सिद्धांत एवं नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। वहीं सैद्धांतिक भाषावैज्ञानिक भाषा के प्रदर्शन के आधार पर मुख्यतः किसी एक पक्ष पर केन्द्रित होकर सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं एवं मानवीय अभिव्यक्ति में प्रयुक्त वाक्य कैसे व्याकरणिक अथवा अव्याकरणिक सम्मत हैं; की सत्यता एवं असत्यता की जाँच करते हैं। यहां भाषा के सिद्धांत एवं व्याकरण को वैश्विक बनाने का कार्य किया जाता है जो सभी प्राकृतिक भाषाओं में प्रयुक्त किया जा सके।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान की संकल्पना भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से ज्यादा प्रभावित है जिसमें प्राकृतिक भाषा को व्याकरण सम्मत विश्लेषण एवं संश्लेषण करने की क्षमता पर बल दिया जाता है। जबकि भाषा अभियांत्रिकी तकनीकी दृष्टिकोण से ज्यादा प्रभावित है, जिसमें भाषा को ज्यादा सरल एवं सहज बनाकर मुश्किल एवं कठिन कार्य को भी आसानी के साथ पूरा करने की क्षमता का विकास किया जाता है। मशीन में भाषा की समझ स्थापित करने हेतु प्रणाली के समस्त आयामों की खोज–बीन एवं उनका संस्थापन करने पर बल दिया जाता है। मानव–मशीन के मध्य संवाद में भाषा की समझ को स्थापित करने हेतु भाषा के समस्त ज्ञान जैसे–शब्द कोश का ज्ञान, वाक्यात्मक ज्ञान, अर्थीय ज्ञान, प्रोक्ति का ज्ञान एवं सांसारिक ज्ञान आवश्यक हो जाता है। यहां पर केवल यह कह देना कि भाषाविज्ञान के समस्त क्षेत्रों के अध्ययन एवं विश्लेषण मात्र से मानव–मशीन के बीच संवाद स्थापित किया जा सकता है, बिल्कुंल ही गलत होगा, क्योंकि भाषा न सिर्फ शब्द या वाक्य पर निर्भर करता है अपितु यह मानव समाज की सभ्यता एवं संस्कृति पर भी निर्भर होती है। यहां बड़े पैमाने पर मशीन में भाषा को स्थापित करना अभियांत्रिकी का कार्य क्षेत्र है। भाषा अभियांत्रिक न केवल भाषा के समस्त पहलुओं का अध्ययन विश्लेषण करते हैं बल्कि इसके अंतर्गत ऐसे हार्डवेयरों का भी निर्माण किया जाना है जिसके द्वारा भाषा को ज्यादा सरल एवं सहज बनाया जा सके।

✦ ✦ ✦

अमेरिकी चुनाव में भारतवंशी अमेरिकी

अभिषेक त्रिपाठी

अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप की जीत ने अमेरिकी चुनाव के समीकरण ही नहीं बदल डाले बल्कि अमेरिकी इतिहास में पहली बार राष्ट्रपति पद के निकट पहुंची एक महिला को चुनने से इंकार कर दिया। इस चुनाव में प्रवासी भारतीयों (भारतीय अमेरिकी) में खासकर कांग्रेस के दोनों सदनों में भारतीय प्रतिनिधित्व को लेकर दिलचस्प तस्वीर सामने आई है। कांग्रेस अर्थात संसद के निचले सदन, के 434 सदस्यों और सौ सदस्यीय ऊपरी सदन सिनेट के एक–तिहाई 34 सदस्यों के लिए चुनाव में प्रवासी भारतीयों की निर्णायक भूमिका रही है, एशियाई अमेरिकी में सर्वाधिक शिक्षित भारतीय चिकित्सकों, इंजीनियरों, उद्यमियों और दानदाताओं की समाज में प्रभावी स्थिति को देखकर कहा जाता है कि अमेरिका में भारतीय चुनाव लड़ते ही नहीं, बल्कि लड़ाते भी हैं।

प्रवासी अमेरिकी भारतीय अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में गहरी दिलचस्पी हमेशा से लेते रहे हैं। वर्तमान में लगभग 31 लाख भारतीय अमेरिका में रह रहे हैं। अमेरिका के इस चुनाव में भारतीयों की केवल एक प्रतिशत उपस्थिति के बावजूद राष्ट्रपति, गवर्नर, सिनेट के सदस्य और कांग्रेस के निचले सदन के लिए प्रवासी भारतीय कहीं चुनाव लड़ रहे थे, तो कहीं चुनाव लड़ा रहे थे। रिपब्लिकन पार्टी से निक्की हैले साउथ कैरोलाइना की दूसरी बार गवर्नर निर्वाचित हुई हैं। वहीं बॉबी जिंदल लुईसियाना के गवर्नर पद से हाल ही में मुक्त हुए हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में मीडिया हलचलों से लेकर सभी जगह यह अनुमान लगाया जा रहा था कि अमेरिका में बसे भारतवंशी किस उम्मीदवार को वोट देंगे? डेमोक्रेटिक पार्टी की उम्मीदवार हिलेरी क्लिंटन के साथ खड़े होंगे या डोनाल्ड ट्रम्प की जीत पक्की करेंगे? अमेरिकन वासेज–2016 के सर्वे के अनुसार इस चुनाव में हर तीन में से दो भारतीय हिलेरी के साथ जा सकते हैं किंतु अंतिम समय में ट्रंप द्वारा भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की तारीफ एवं मोदी नीति ने भारतवंशियों को प्रभावित किया, जिसका परिणाम ट्रंप का विजयी होना है।

2010 की जनगणना के अनुसार लगभग अमेरिका की कुल 31 करोड़ की आबादी में प्रवासी भारतीय एक प्रतिशत हैं। इनमें हिंदू (51 प्रतिशत) सर्वाधिक हैं। इनके अलावा भारतीय मुस्लिम, सिख, जैन, पारसी और ईसाई हैं। इन भारतीयों के मिलने–जुलने और पूजा अर्चना के लिए अपनी–अपनी संस्थाएं, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और चर्च हैं। भारतीय बहुल इलाकों, खासकर न्यूयॉर्क, बाल्टीमोर, वाशिंगटन, बोस्टन, शिकागो, लॉस एंजेलिस आदि में मौजूदा भाषा–भाषियों के लिए निजी हिंदी मराठी रेडियो स्टेशन हैं। सलाम नमस्ते, फन एशिया, हम सफर, संगीत रेडियो, तमिल तेलुगु केबल टीवी आदि हैं। यही नहीं, भारतीय त्यौहारों आदि के अवसर पर धर्म, जाति और मत–मतांतरों के भारतीय लोग एक साथ मिलकर आनंद मेला करते हैं।

हाल ही में, अमेरिका में भारतवंशी समुदाय ने राजनीतिक व्यवस्था क्रम में बहुत दिलचस्पी ली है। 1960 के दशक की शुरुआत में कैनेडी के प्रशासन के दौरान, भारतीय जातीय समुदाय के सदस्य दिलीप सिंह सौंद को अमेरिकी कांग्रेस के निम्न सदन के लिए सफलता पूर्वक चुना गया। तबसे, भारतीय मूल के कई प्रवासियों ने दोनों पार्टियों (डेमोक्रेटिक और रिपब्लिक) के टिकटों पर अमेरिका के विभिन्न प्रांतों में, विभिन्न पदों पर चुनाव लड़े और जीते भी हैं। यदि हम अमेरिका में भारतीय संगठित राजनीतिक संस्थाओं के इतिहास की ओर देखें तो हमें कई ऐसी संस्थाएँ मिलेगी, जो अमेरिकी चुनाव में अहम भूमिका निभाती हैं। इसी क्रम में, उत्तरी अमेरिका में इंडिया लीग ऑफ अमेरिका और एसोसिएशन ऑफ एशियन इंडियन जैसे कई संगठनों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। संगठित होने और सामूहिक आवाज में अपने हितों को स्पष्ट रूप में व्यक्त करने की जरूरत को महसूस करते हुए, 1970 के दशक में अमेरिका में कई भारतीय राजनैतिक एसोसिएशन बने। एसोसिएशन ऑफ इंडियंस इन अमेरिका (1967), इंडियन लीग ऑफ अमेरिका (1972) की स्थापना हुई। भारत अनुकूल प्रमुख निकायों में आईएएफपोई (इंडियन अमेरिकन फोरम फॉर पोलिटिकल एजुकेशन) की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी क्रम में एक और प्रभावशाली जातीय भारतीय अमेरिकी संगठन, अमेरिका भारत राजनीतिक कार्यवाई समिति (यूएसआईएनपीएसी) की स्थापना अक्तूबर 2002 में की गयी थी। 2003 में इस संस्था का कार्यालय वाशिंगटन डीसी में तथा 2005 में नई दिल्ली में खोला गया। इस संस्था की

स्थापना कांग्रेस को एकीकृत आवाज देने के लिए तथा भारतीय अमेरिकी समुदाय के लिए चिंता व महत्त्व के मुद्दों की नीति पर गहरा असर डालने के लिए की गई थी। इस संगठन ने अमेरिका में डेमोक्रेटिक और रिपब्लिक दोनों पार्टियों से दोनों सदनों में कांग्रेस के 100 से भी अधिक सदस्यों का समर्थन प्राप्त करते हुए, अमेरिकी कांग्रेस में भारत के लिए 'कॉकस' समूह की स्थापना को भी सुगम बनाया है। इस संस्था की उपलब्धियों में महत्वपूर्ण 1999 के कारगिल संकट के दौरान कारगिल से हटने के लिए पाकिस्तान सरकार को बाध्य करने के लिए क्लिंटन प्रशासन को मनाना तथा 2008 में भारत–अमेरिका असैन्य परमाणु समझौते कानून में मंजूरी के साथ–साथ अन्य मुद्दों पर भी प्रभावित करना रहा है। इन्हीं दबावों, संख्या बल एवं राजनीतिक दिलचस्पी के कारण अमेरिकी चुनाव में रिपब्लिक उम्मीदवार डोनाल्ड ट्रम्प, जो हमेशा मेक्सिको एवं भारतीय प्रवासियों के साथ अन्य देशों के प्रवासियों के प्रति अपने भाषणों में कटुता, ईर्ष्या एवं विद्वेष के प्रयोगों के बावजूद, भारतीय प्रवासियों के हितों में नीतियां लागू करने एवं मोदी नीति के समर्थन में उनके भाषण ने यह स्पष्ट कर दिया था कि भारतीय प्रवासियों की अमेरिकी चुनाव में हमेशा से क्या भूमिका एवं महत्व रहा है। ट्रम्प ने रिपब्लिक हिन्दू कोएलिशन द्वारा आयोजित एक चैरिटी समारोह में भारतीय–अमेरिकियों को अपने संबोधन में भारत को एक "अहम रणनीतिकार सहयोगी" बताते हुए ट्रम्प ने वादा किया था कि यदि वह सत्ता में आते हैं तो भारत और अमेरिका "पक्के दोस्त" बन जाएंगे और उनका एक साथ अभूतपूर्व भविष्य होगा। ट्रम्प ने भारतीय प्रधानमंत्री मोदी के राजनीतिक कूटनीति की तारीफ करते हुए भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र बताते हुए अमेरिका का सहयोगी भी माना। ट्रम्प ने आर्थिक सुधारों और नौकरशाही में सुधारों के साथ भारत को तेज विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की प्रशंसा की और कहा कि ऐसा अमेरिका में भी होना जरूरी है, यदि वह अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव को जीतते हैं तो अमेरिका में "मोदी नीति" लागू करेंगे तथा अमेरिकी भारतवंशियों के हितों से संबंधित नीति भी लागू करेंगे। लोगों का मानना है कि डोनाल्ड ट्रम्प ने यह भाषण भारतीय प्रवासियों को अपने पाले में लेने के लिए दिया था और वह इसमे कामयाब भी हुए। पिछले कुछ महीनों में, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा विश्व में रह रहे भारतीय प्रवासी देशों का दौरा करना और वहां भारतीय प्रवासियों को संबोधित करते हुए, प्रवासियों की भीड़ ने स्पष्ट कर दिया था कि प्रधानमंत्री मोदी भारतियों के साथ ही साथ प्रवासी भारतीयों के पसंदीदा प्रधानमंत्री है। इन्ही कारणों ने रिपब्लिक पार्टी के राष्ट्रपति पद के दावेदार, डोनाल्ड ट्रम्प को भारतीय प्रवासियों, भारतीय हितों एवं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तारीफ करने के लिए मजबूरन भाषण देना पड़ा। कहीं न कहीं ट्रम्प को यह ज्ञात है, अमेरिकी भारतवंशी अमेरिकी चुनाव में निर्णायक भूमिका निभाएंगे।

अमेरिका से लेकर ब्रिटेन और कनाडा से लेकर केन्या तक की संसद में भारतीय राजनीति में भाग ले रहे हैं। उन्हें वोटर बने रहना ही पसंद नहीं है। अगर ये बात न होती तो 22 देशों की पार्लियामेंट में भारतीय मूल के 182 सांसद न होते, भारतीय प्रवासी बढ़–चढ़कर चुनावी गतिविधियों में भाग लेते हैं। त्रिनिदाद, टोबेको, केन्या, मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका, घाना, कनाडा, ब्रिटेन जैसे देशों की पार्लियामेंट में भारतीयों का होना समझ में आता है क्योंकि इन देशों में भारतीय लंबे समय से जाकर बसे हैं। फ्रांस, जर्मनी, पनामा, जांबिया, जिम्बाव्वे जैसे देशों की पार्लियामेंट में भी भारतीय पहुंच चुके हैं। यदि हम लघु भारत मारीशस की बात करें तो वहां पर दो भारतवंशी– पूर्व प्रधानमंत्री नवींनचन्द्र रामगुलाम और वर्तमान प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ राजनीतिक रूप से एक–दूसरे के खिलाफ खड़े होते हैं। पिछले चुनाव के बाद रामगुलाम के स्थान पर पूर्व राष्ट्रपति अनिरुद्ध जगन्नाथ प्रधानमंत्री बने। रामगुलाम के पिता जी श्री शिवसागर रामगुलाम की अगुवाई में मारीशस को आजादी मिली थी। आप इस देश के प्रमुख एवं प्रधानमंत्री रहे। एक अन्य देश मलेशिया के चोटी के भारतवंशी नेता और कैबिनेट मंत्री रहे सैम वेली ने एक बार एक लेखक से साक्षात्कार के दौरान कहा था कि मलेशिया में सभी दल भारतवंशियों को टिकट देते हैं। मलेशिया में भारतीयों की एक राजनीतिक पार्टी, 'मलेशियन इंडियन कांग्रेस' भी है। इस पार्टी की स्थापना 1946 में हुई थी। इसी प्रकार पिछले साल ब्रिटेन में हुए आम चुनाव में भारतीय मूल के रिकार्ड 10 सांसद चुने गए हैं, जिनमें इंफोसिस के सह संस्थापक नारायण मूर्ति के दामाद ऋषि सुनाक भी शामिल हैं। इस चुनाव में पिछले 2010 में हुए चुनाव का रिकार्ड टूट गया था। ब्रिटेन में 2010 में 8 भारतीय जबकि 2015 में 10 भारतवंशी सांसद चुने गए। कनाडा में पिछले साल अक्तूबर में हुए संसद चुनाव में भारतीय मूल के 19 भारतवंशियों ने जीत हासिल की थी।

अमेरिका में भारतवंशियो की राजनीति में पदार्पण की शुरुआत 1994 में मैरीलैंड और न्यूजर्सी से पहले भारतीय अमेरिकी क्रमशः कुमार ब्रेव और उपेंद्र चीवकुला को अपने–अपने विधान मंडल से चुना गया। वर्ष 2000 में सतवीर चौधरी, सोटा से चुने जाने वाले राज्य के पहले सीनेटर बने। आपको 2006 में पुनः चुना गया। आयोवा राज्य प्रतिनिधि स्वाति डाडे डेमोक्रेट भी तीसरी बार जीतीं। कई भारतीय

अमेरिकी राज्यों में मेयर का पद भी जीत चुके हैं। उनमें शामिल हैं– हालीवुड पार्क, टेक्सास में बाला के। श्रीनिवास, टीनेक न्यूजर्सी में जॉन अब्राहम और व्युरियन वाशिंगटन में अरुण झावेरी हैं। अमेरिका में कई भारतवंशी राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रसिद्ध हुए हैं। क्लिंटन प्रशासन के दौरान डॉ. आरती प्रभाकर को नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ स्टैंडर्ड्स एंड टेक्नोलाजी का निदेशक नियुक्त किया गया था, नील ढिल्लों को ट्रांसपोर्टेशन का डिप्टी असिस्टेंट सेक्रेटरी तथा डॉ. राजेन आनंद को यूएसडीए के अंतर्गत सेंटर फॉर न्यूट्रीशन पॉलिसी का कार्यकारी नेदेशक नियुक्त किया गया था। जार्ज बुश जूनियर के प्रशासन में बॉबी जिंदल को हेल्थ विभाग का असिस्टेंट सेक्रेटरी नियुक्त किया गया था, गोपाल खन्ना को पीस कोर्स का चीफ टेक्नोलोजी ऑफिसर नियुक्त किया गया था। करन भाटिया को डिपार्टमेन्ट ऑफ कॉमर्स में डिप्टी अंडर सेक्रेटरी नियुक्त किया गया था।

इसी क्रम में भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति, बराक ओबामा के प्रशासन में कई भारतवंशियों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया गया था। जिनमें शामिल हैं, मुस्लिम जगत के लिए अमेरिका के विदेश विभाग की प्रतिनिधि फराह पंडित, 57 सदस्यों वाले आर्गनाइज़ेशन ऑफ इस्लामिक कंट्रीज (ओआईसी) के अमेरिकी राजदूत रशद हुसैन, अमेरिका के चीफ एग्रीकल्चर नेगोशिएटर डॉ. इस्लाम सिद्दकी, यूनाइटेड स्टेट एजेंसी फॉर इंटेरनेशनल डेवलपमेंट (यूएसएड) के प्रशासक डॉ. राजीव शाह की नियुक्ति के साथ ही अमेरिका में बसे भारतीयों का अन्य महत्वपूर्ण पदों पर भी नियुक्ति हो चुकी है। डोनाल्ड ट्रंप के राष्ट्रपति बनने के बाद उनके प्रशासन में कई भारतीय मूल के अमेरिकियों को जगह मिल सकती है। ट्रंप के साथ पूरी चुनाव प्रक्रिया में जुटी भारतीय मूल की हरमीत कौर ढिल्लों ने पिछले दिनों कहा कि अगले 20 जनवरी को राष्ट्रपति प्रशासन में बेहतरीन प्रतिभाओं को शामिल किया जाएगा। अमेरिका में भारतीय प्रवासियों को अन्य देशों के प्रवासियों की अपेक्षा 'आदर्श प्रवासी' माना जाता रहा है। भारतवंशी अमेरिकी चुनाव में प्रचार–प्रसार के साथ ही साथ चुनाव में दानदाताओं की सूची में अव्वल रहते हैं।

वर्तमान अमेरिकी चुनाव परिणाम के कारणों को इतिहास में देखा जा सकता है। हिलेरी क्लिंटन तथा उनके पति पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन कभी भारत के मित्र नहीं रहे। क्लिंटन वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने तत्कालीन विदेश मंत्री मैडेलीन अलब्राइट की पुस्तक की भूमिका में भारतीय सेना के लिए हिंदू आतंकवादी शब्द का प्रयोग किया था। क्लिंटन ने अपने राष्ट्रपति काल में एक साल तक भारत में राजदूत नियुक्त करने की जरूरत नहीं समझी तथा रूस को क्रायोजेनिक इंजन देते समय शर्त लगाई कि यह तकनीक भारत को नहीं दी जाएगी। ट्रंप को अमेरिकियों एवं भारतवंशियों ने इसलिए चुना कि वह शत्रुओं को क्षमा नहीं करेंगे और मित्र (भारत) का साथ निभाएंगे।

इसी कारण अमरीका में भारतीय मूल के हिंदुओं ने क्लिंटन के बजाय ट्रंप को चुना। ट्रंप की जीत ने आतंकवाद समर्थकों को हराया। ट्रंप के उदय से अब विश्व राजनीति के समीकरण बदलेंगे और पुतिन–ट्रंप–मोदी के त्रिकोण से नई विश्व व्यवस्था का उदय हो सकता है। पाक प्रायोजित आतंकवाद के विरुद्ध भारत की लड़ाई ज्यादा मजबूत बनेगी। कल्पना कीजिए–अमेरिका से ट्रंप, रूस से पुतिन और भारत से श्री नरेंद्र मोदी जब एकजुट होकर आतंकवाद तथा उसे पोषित करने वाले काला धन पर प्रहार करेंगे, तो दुनिया का मौसम और मिजाज बदल जाएगा। यह शुभ संकेत है।

भाषा और मनुष्य की अस्मिता

यदुवंश यादव

भाषा व मनुष्य में बहुत ही गहरा संबंध होता है या यह भी कह सकते हैं कि दोनों एक दूसरे को समान रूप से प्रभावित करते हैं। भाषा कभी भी अचानक से नहीं उत्पन्न होती है, उसके विकास में निश्चय ही एक लंबा समय व्यतीत होता है। केवल समय ही नहीं अपितु समाज, संस्कृति में भी अनेकों प्रवृतियां भाषा के विकास में सहयोग प्रदान करती हैं। इन सारी प्रवृतियों से जुड़े रहने के कारण भाषा सदैव इन प्रवृतियों को भी प्रभावित करती रहती है। भाषा का विकास सदियों का परिणाम होता है और यह अपने पूरे परिवेश से प्रभावित होती है। यदि परिवेश में विभिन्नता रहती है तो कई प्रकार की भाषाओं का विकास होता है, भारतीय परिदृश्य प्रत्यक्ष उदाहरण है। इससे तो इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्राचीन काल से ही भारत बहुभाषी रहा है। सदियों से चली आ रही इसकी इस बहुभाषिकता ने ऐसे 'भारतीय' व्यक्तित्व को जन्म दिया है जिसे न तो आर्य जाति की संज्ञा दी जा सकती है और न ही अनार्य जाति की। यह व्यक्तित्व बना है सदियों से साथ रहने वाले आर्य, द्रविड़, किरात, निषाद आदि जतियों के मेल–मिलाप से उनके सांस्कृतिक गुणों, भाषाई लक्षणों के अभिसारण और समीकरण की प्रक्रिया से। जब यह निश्चय है कि भाषा एक परिवेश होती है और वह उसी में विकसित होती है। इस परिवेश में मनुष्य एक प्रमुख अंग के रूप में स्थापित है, जो भाषा का सबसे अधिक उपयोग करता है। भाषा मनुष्य के बहुत सारे क्रियाकलापों में सीधे तौर पर शामिल होती है, जिससे वह उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी करती है और उसकी पहचान भी निर्मित करती है। लेकिन यह भी सत्य है कि लोगों द्वारा भाषा के रूप को संकीर्णता में प्रयोग करके किसी व्यक्ति, समाज व धर्म से जोड़कर देखा जाता है। यह जोड़ा जाना नितांत ही अनावश्यक है क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी भाषा के सीखने में एक निश्चित परिवेश में रहता है, यदि कोई भी व्यक्ति उस परिवेश में रहेगा तो वह वही भाषा सीख जाएगा, चाहे वह किसी भी जाति,धर्म या समाज का हो।

भारतीय स्थितियों में भाषा को लेकर बड़ा विवाद है। यह एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है जो अपनी भौगोलिकता के कारण कई प्रकार की विभिन्नता लिए हुए है। जिस कारण से सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर भी व्यापक विभिन्नता है, जिससे इसके कई रूप देखे जा सकते हैं और जिसके कारण बहुत सारी भाषाएं भी विद्यमान हैं। परंतु यदि किसी व्यक्ति की उन भाषाओं से पहचान की जाने लगे और किसी विशेष भाषा को किसी वर्ग के लिए सीमित कर दिया जाए तो यह भाषा को संकुचित करने का प्रयास होगा। भारत में भाषा व मनुष्य की अस्मिता को लेकर हिंदी–उर्दू विवाद विशेष रूप में देखा जा सकता है। जब भी उर्दू की बात शुरू होती है तो आम जन–मानस उसे केवल एक विशेष वर्ग की भाषा मान लेता है, जबकि उर्दू और हिंदी में बहुत व्यापक अंतर नहीं है सिवाय लिपि के। यह बात सत्य है कि उर्दू परंपरा में अरबी–फारसी का प्रभाव है परंतु यह बात भी सत्य है कि हिंदी परिवेश का भी व्यापक प्रभाव रहा है, क्योंकि उर्दू का जन्म ही इसी परिवेश में होता है। भाषाई संस्कारों के आधार पर हिंदी और उर्दू की परंपरा बहुत कुछ मिलती–जुलती है। दक्षिण में जन्मी उर्दू का विकास उत्तर के हिंदी प्रदेश में ही व्यापकता प्राप्त करता है। परंतु आजादी के बाद समाज जबकि विभाजन की एक बड़ी त्रासदी झेल चुका था, आगे चल कर जब सत्ता के चरित्र में बदलाव आने लगे तो बहुत सारे सामाजिक व राजनीतिक कारण रहें जिसने भाषा व मनुष्य को एक दूसरे रूप में परिभाषित किया। आजादी के बाद 70 के दशक में भारत में हुए सांप्रदायिक दंगे इसके केंद्रीय रूप में देखे जा सकते हैं। अल्पसंख्यक के प्रति एक अलग तरह का मानस तैयार होने लगा जिससे उर्दू भी अछूती न रही। अदब एक भाषा की संरचना है। इक्कीसवीं सदी के उर्दू के अदब के सामने लगभग वही चुनौतियां है जो हिंदी या दीगर भारतीय जबानों के सामने है। उर्दू के सामने में चुनौतियां थोड़ी ज्यादा हैं। उर्दू को मुस्लिम अल्पसंख्यकों की भाषा मान लिया गया है। यह कहा जाना चाहे गलत लगे और इसे सुनना बुरा लगे, पर ऐसा हुआ है। हमारे समय की राजनीतिक स्थितियों ने अपनी धूर्तता के चलते इसे एक किस्म का कामनसेंस बना दिया है।

इन सारी घटनाओं के बाद भारतीय समाज में एक नए तरीके का मानस तैयार हुआ। यह मानस बहुत कुछ उर्दू के प्रति सकारात्मक नहीं रहा, जिसका परिणाम हम लेखन से लेकर व्यवहार तक के रूप में देख सकते हैं। विभाजन के बाद पाकिस्तान के प्रति एक बहुत ही अलग प्रकार का

नजरिया रखा जाने लगा, जिससे बहुत कुछ भारतीय मुसलमान भी प्रभावित हुए। भाषा के स्तर पर उर्दू को लेकर एक नए प्रकार की सोच का विकास हुआ जिसमें लोगों की मानसिक संरचना यह भूलने लगी कि उर्दू भारतीय परिवेश से उत्पन्न व नितांत भारतीय संस्कृति से जुड़ी है। इस बात को पुष्ट करने में अंध धार्मिकता ने अपनी महती भूमिका निभाई। अब जैसा कि एक नए परिवेश का गठन हो रहा था तब उर्दू जानने वालों को मुसलमान की पहचान से जोड़कर देखा जाने लगता है। जिसने सामाजिक संरचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया। जहां पहले उर्दू सरकारी काम–काजों में प्रयुक्त होने वाली भाषा थी जिसने मुसलमानों के अलावा बहुत सारे अन्य दूसरे वर्गों ने उर्दू सीखी थी इसमें भी क्षीणता देखने को मिलती है। अलगाव की इस बढ़ती प्रक्रिया को लेकर मुस्लिम वर्ग में धर्म के प्रति संकीर्णता आने लगी तो इस वर्ग ने भी उर्दू में शाब्दिक तौर पर काफी फेर–बदल किया जो अरबी–फारसी के बजाय भारतीयता से युक्त थी। जैसे– हमेशा मुसलमान 'खुदा हाफिज' ही कहा करते थे परंतु अब के समय में एक नए शब्द 'अल्लाह हाफिज' की उत्पत्ति हुई जो स्वयं को इस समकालीन भारतीय परिवेश में स्थापित व अस्मिता को लेकर प्रयोग की गई। मुस्लिम अल्पसंख्यक के प्रति लोगों में उसी तरह की भावना उत्पन्न होने लगी कि यह अल्पसंख्यक हैं और यह व्यवहार में भी आ गया। अल्पसंख्यक होने की यह भावना उनके पहचान के लिए उत्तरदायी बन गयी। भाषा के स्तर पर दोहरी भूमिका शिक्षा प्रक्रिया ने भी निभाई, जिसमें व्यावहारिक तौर पर हिंदी, उर्दू और संस्कृत को कुछ विशेष लोगों के लिए निबद्ध कर दिया गया। इस संकीर्णता के कारण भी वर्ग विशेष के व्यक्ति को अस्मिता के स्तर पर प्रभावित किया।

किसी भी नए राष्ट्र के बनने में कभी–कभी धर्म या भाषा उतने महत्वपूर्ण नहीं होते जितने की संस्कृति, समाज, भौगोलिक परिस्थितियां आदि। परंतु जब 1947 में एक नए राष्ट्र का निर्माण हुआ तो उसकी यह सबसे बड़ी विडंबना रही कि उसका निर्माण ही धर्म और भाषा को केंद्र में रखकर हुआ। उसके अपने राजनैतिक व अन्य कारण भी थे परंतु ये दोनों तत्व उसके विभाजन में महती भूमिका निभाते हैं। भारत विभाजन जो बहुत सारी प्रवृत्तियों का विभाजन था उसमें भाषा भी एक महत्वपूर्ण तत्व रही। उर्दू पाकिस्तान की राजभाषा बना दी गई और भारत पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीय मुसलमान और भारतीय उर्दू जो मूल रूप से इसी जमीन से विकसित हुए थे वे अब गैर मुल्की हो गए। इस बात का व्यापक असर मनुष्य की अस्मिता पर भी पड़ा, जो कि भारतीय होकर भी गैर मुल्की हो गए। भाषाई रूप में ही सही परंतु अस्मिता के इस प्रश्न ने इस वर्ग के अस्तित्व को व्यापक रूप में प्रभावित किया। यह भाषा विवाद लोगों का अपना–अपना हित साधन था। कोई धार्मिक स्तर पर, कोई राजनीतिक स्तर पर तो कोई सामाजिक स्तर पर अपना वर्चस्व कायम करने में लगा रहा। सच तो यह है कि हिंदी और उर्दू की लड़ाई कम, भाषाई अस्मिता की लड़ाई अधिक है। और अगर ऐसा है तो यह देखना अनुचित न होगा कि सामाजिक यथार्थ के धरातल पर कौन 'लोग' 'किसके खिलाफ' और 'किस चीज के लिए' यह लड़ाई लड़ रहें हैं।

मनुष्य की अस्मिता वास्तविक रूप में उसके सामाजिक परिवेश व उसके अपने कर्तव्यों पर आधारित होती है। किसी भी भाषा से यह परिभाषित नहीं की जा सकती है। भाषा और समाज में एक विशेष संबंध होता है। किसी समाज के परिवेश से निर्मित व उसके लिए आवश्यक भाषा ही उस समाज का विकास कर सकती है। जैसा कि यह देखा जा सकता है कि सन् 1947 में पाकिस्तान स्वतंत्र तो हो गया परंतु उसका दूसरा भाग जो अब बांग्लादेश है उसमें कई सारी बातों को लेकर ऊहापोह बना रहा। जिसमें उर्दू भी एक प्रमुख तत्व के रूप में दिखाई पड़ती है। उस परिवेश के लिए बांग्ला भाषा उपयोगी थी परंतु पाकिस्तान व मुस्लिम परंपरा के नाम पर उर्दू का थोप दिया जाना 1971 का कारण बनाता है जिसमें से बांग्लादेश विभाजित हो जाता है। यह विभाजन यह दर्शाता है कि किसी भी राष्ट्र या समाज पर जबर्दस्ती की भाषा का थोप दिया जाना उसके लिए नकारात्मक ही साबित होता है।

भाषा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसपर परस्पर किसी भी व्यक्ति या समाज का अधिकार नहीं हो सकता। यह स्वतंत्र होती है परंतु सत्ता या समाज अपने अधिकारों से इसकी व्यावहारिकता व उपयोग में कमी ला सकता है, जो कि उर्दू के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। उर्दू जिसकी एक सुदृढ़ व विकसित परंपरा थी और एक समय में यह भारत की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग थी और संपूर्ण भारतीय सांस्कृतिक विरासत को विकसित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा। आजादी के बाद सत्ता व समाज का एक ऐसा चरित्र जो धर्म निरपेक्षता का झूठा ढोंग रचकर सत्ता की लोलुपता के लिए एक नए प्रकार के विभाजित समाज को बना रहा था इस चरित्र ने उर्दू के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया। उर्दू धीरे–धीरे सामाजिक विकास की प्रक्रिया जैसे रोजगार, साहित्य, कला आदि विरासतों से दूर होने लगी या फिर दूर की जाने लगी। इस रूप में भी इस भाषा के प्रयोग करने वाले समाज पर अस्मिता का संकट उत्पन्न हुआ। वह मनुष्य जो अपने विकास में उर्दू की परंपरा का वाहक रहा वह अब धीरे–धीरे अपनी अस्मिता के प्रश्न को लेकर संकट के घेरे में आ गया। शिक्षा–प्रक्रिया जिससे उसका समुचित विकास

हो सकता था उससे भी उसे विभिन्न क्रिया–कलापों के द्वारा बेदखल किया जाने लगा। पक्षपात, सांप्रदायिक मानसिकता एवं उपेक्षाओं से आहत मुस्लिम युवाओं में शिक्षा को लेकर बड़ी उदासीनता आई है जबकि युवाओं का यह सोचना आवश्यक है कि अपनी स्थिति में सुधार लाने तथा अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए शिक्षा का क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसको सारे क्षेत्रों पर वरीयता दी जानी चाहिए परंतु दुख की बात है कि इसी समस्या को सबसे कम महत्व दिया जा रहा है। सामाजिक परिस्थितियों की यह एक बड़ी विडंबना रही है कि भाषा को धर्म के अधीन कर दिया। धर्म इसका नियंता होने लगा। किसी भी विशेषधर्म के लिए विशेष भाषा की संकल्पना उत्पन्न होने लगी जिससे भाषा के व्यापक विस्तार में संकीर्णता का समावेश होने लगा और मनुष्य का अस्तित्व ये धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक प्रवृत्तियों के द्वारा निर्धारित होने लगी। जिसका सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि एक भाषा दूसरे भाषा पर सत्ता स्थापित करने का प्रयास करने लगी।

मीडिया एकाधिकार की चुनौतियाँ और नियमन के सवाल

भवानी शंकर मिश्र

"संचार माध्यमों पर थोड़े से ऐसे लोगों का एकाधिकार है जिनकी सब लोगों तक पहुँच हैं। इतने सारे लोग इतने से थोड़े लोगों द्वारा संचार की दृष्टि से बंधक बनाकर रखे गए हों, ऐसा कभी नहीं हुआ। ज्यादा से ज्यादा लोग सुनने और देखने का अधिकार हासिल करते जा रहे हैं लेकिन सूचना देने, अपनी राय जाहिर करने और रचना करने का विशेषाधिकार कम से कम लोगों के हाथों में सीमित होता जा रहा है।

–एडुआर्डो गैलियानो (एडवर्ड एस हरमन और रॉवर्ट डब्ल्यू मैकचेस्नी द्वारा लिखित भूमंडलीय जनमाध्यम से उद्धृत)

मीडिया का मूल उद्देश्य शिक्षा, सूचना और मनोरंजन है। यह संचार का सामाजिक माध्यम है और लोक अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन भी। अगर इतिहास पर गौर करें तो भारतीय मीडिया जन सामान्य की भावनाओं को अभिव्यक्ति देता रहा है और वास्तविकता को सामने लाने के साथ–साथ राष्ट्र–निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी करता रहा है लेकिन विगत दो दशकों में इसके संदर्भ और अर्थ लगातार बदलते रहे हैं। यह नव–उदारवादी नीतियों व बाजार से काफी हद तक प्रभावित हुआ है। मीडिया की पब्लिक ओपीनियन अर्थात जनमत निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि यह वर्तमान में कैसा जनमत निर्माण कर रहा है और किसके लिए जनमत निर्माण में लगा है। हम जिस भूमंडलीकरण व बाजारीकरण के दौर में हैं उसमें भारतीय लोकतंत्र की सभी महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ जिसमें मीडिया भी शामिल है, काफी हद तक भूमंडलीकरण व पूँजी से प्रभावित हुई है। परिणामत इसके चरित्र एवं कार्य–शैली में गुणात्मक बदलाव आया है (जोशी, रामशरण 2016)। विगत दो दशकों में मीडिया का स्वरूप काफी तेजी से बदला है। भारतीय मीडिया के राजस्व को देखें तो इस इंडस्ट्री का कारोबार लगातार बढ़ता जा रहा है। भारत में यह उद्योग लगातार बढ़ रहा है। फिक्की केपीएमजी 2015 के रिपोर्ट के मुताबिक 2013 में 918 बिलयन रुपये से बढ़कर 2014 में 1026 बिलयन रुपये हो गया। यह विकास 11.2 फीसदी की दर से हुई। अनुमान है कि अगले पाँच वर्षों में समग्र विकास दर (सीएजीआर) 13.9 फीसदी होगी। तब यह आँकड़ा 1964 बिलयन रुपये पहुँच जाएगा। नीचे दी गई सारणी से मीडिया के वर्तमान आकार को आसानी से समझा जा सकता है।

भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग का आकार और अनुमान

Overall Industry size (INR billion) (For calendar years)	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014	Growth in 2014 Over 2013	2015P	2016P	2017P	2018p	2019P	CAGR (2014-2019P)
TV	214.0	257.0	297.0	329.0	370.1	417.2	474.9	13.8%	543.2	631.2	739.6	854.6	975.5	15.5%
PRINT	172.0	175.2	192.9	208.8	224.1	243.1	263.4	8.3%	284.5	307.1	331.9	358.0	386.8	8.0%
FILMS	104.4	89.3	83.3	92.9	112.4	125.3	126.4	0.9%	136.3	155.6	170.7	186.3	204.0	10.0%
RADIO	8.4	8.3	10.0	11.5	12.7	14.6	17.2	17.6%	19.6	22.3	27.0	32.7	39.5	18.1%
MUSIC	7.4	7.8	8.6	9.0	10.6	9.6	9.8	2.3%	10.4	12.0	14.2	16.9	18.9	14.0%
OOH	16.1	13.7	16.5	17.8	18.2	19.3	22.0	14.0%	24.4	27.1	29.6	32.2	35.1	9.8%
ANIMATIONAND VFX	17.5	20.1	23.7	31.0	35.3	39.7	44.9	13.1%	51.0	58.7	68.5	80.6	95.5	16.3%
GAMING	7.0	8.0	10.0	13.0	15.3	19.2	23.5	22.4%	27.5	31.8	35.4	40.0	45.8	14.3%
DIGITAL ADERTISTIG	6.0	8.0	10.0	15.4	21.7	30.1	43.5	44.5%	62.5	84.0	115.3	138.2	162.5	30.2%
TOTAL	**580**	**587**	**652**	**728**	**821**	**918**	**1,026**	**11.7%**	**1159**	**1330**	**1532**	**1740**	**1964**	**13.9%**

(स्रोत फिक्की केपीएमजी की मीडिया और मनोरंजन संबंधी रिपोर्ट, 2015)

ऐसे में इसका विश्लेषण करना जरूरी हो जाता है। सवाल यह है कि क्या मीडिया वर्तमान परिवेश में अपनी अपेक्षित भूमिका निभा रहा है ? या केवल अपने व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति कर रहा है। मीडिया सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के साथ जनता और सरकार के बीच में एक कड़ी का काम करे तथा लोक–कल्याण की भूमिका निभाए । हमारे समाज में जो वर्षों से शोषित, पीड़ित और लाचार लोग हैं उनकी आवाज को बल प्रदान करे। साथ ही साथ जनता को सही सूचनाएँ प्रदान करे पर वर्तमान स्थिति एकदम अलग है। आज मीडिया सामाजिक सरोकार के नाम पर कॉरपोरेट घरानों की बात करता नजर आ रहा है। समाज का महत्त्वपूर्ण वर्ग जो शोषित, लाचार और मुख्य धारा से अलग हैं, उनसे मीडिया कट सा गया है। मुनाफा की होड़ में आज मीडिया अपनी जिम्मेदारियों से विचलित होता दिखाई दे रहा है। ''कॉरपोरेट मीडिया का पूरा ढाँचा वर्गीय हितों के अनुरूप निर्मित हुआ है। कॉरपोरेट मीडिया की कामयाबी सिर्फ यह नहीं है कि वह वर्गीय हितों के अनुरूप काम करता है, बल्कि यह है कि वह ऐसा करते हुए नजर नहीं आता। यानी वह जनता के बड़े हिस्से में यह विश्वास पैदा करने में कामयाब रहता है कि वह उसके हित में काम कर रहा है (समयांतर 2011, पृ. 74)।'' भारतीय मीडिया कारोबार के मुनाफे का ग्राफ लगातार बढ़ता जा रहा है। विगत दो दशकों में मीडिया के बहुआयामी विस्तार के साथ–साथ एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ भी बढ़ी हैं। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि क्या इसकी भूमिका पहले जैसी है या कुछ परिवर्तन हुआ है?

उदारीकरण के बाद मीडिया में विदेशी पूँजी निवेश (एफडीआई) की मंजूरी मिली, परिणामतः मीडिया में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ–साथ बड़े कॉरपोरेट घराने भी निवेश करने लगे और मीडिया में एक तरह से संकेंद्रण की प्रवृत्ति शुरू हुई। जिससे मीडिया के लिए मुनाफा कमाना ही प्रमुख उद्देश्य हो गया। आज बड़े मीडिया घराने छोटे मीडिया समूहों का अधिग्रहण कर रहे हैं। अखबारों के बहुसंस्करण निकल रहे हैं, जिनसे स्थानीय अखबार बंद होते जा रहे हैं और बड़े मीडिया समूह लगातार छोटे समूहों का अधिग्रहण कर एकाधिकार की तरफ बढ़ रहे हैं। उदाहरण के तौर पर दैनिक भास्कर समूह द्वारा सौराष्ट्र समाचार नामक दैनिक और बेनेट कोलमैन द्वारा कन्नड़ दैनिक का अधिग्रहण। इसी तरह दैनिक जागरण द्वारा नईदुनिया समाचारपत्र का अधिग्रहण सामने है। मीडिया कंपनियो ने आज अन्य स्रोतों में भी निवेश करने की शुरुआत कर दी हैं। कई समाचारपत्र समूह व मीडिया घराने रियल स्टेट के अलावा और भी बहुत सारे उद्योगों में पूँजी निवेश कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में बहुराष्ट्रीय मीडिया कंपनियाँ यहाँ पूँजी निवेश तो कर ही रही हैं साथ–साथ रिलायंस, बिड़ला व अन्य दूसरे बड़े व्यावसायिक घराने भी मीडिया में क्रॉस ओनरशिप के जरिए एकाधिकार की तरफ बढ़ रहे हैं। परिणामतः मीडिया में पेड न्यूज, प्राइवेट ट्रीटी, लॉबिंग जैसी प्रवृत्तियों का विस्तार हो रहा है। इस संदर्भ में दिलीप मंडल लिखते हैं–''बड़े मीडिया समूहों के बीच अब कई तरह के गठबंधन सामने आ रहे हैं। टाइम्स ऑफ इंडिया और हिंदुस्तान ने मिलकर दिल्ली में मेट्रो नाउ नाम का लेबलायड साइज का अखबार चलाया (फिलहाल अब बंद है) जी और भास्कर ग्रुप मिलकर मुंबई में डीएनए नाम का अखबार चला रहे हैं। दैनिक जागरण और टीवी 18 ग्रुप के बीच चैनल चलाने का करार हुआ और इन दोनों समूहों ने मिलकर हिन्दी में बिजनेस अखबार निकालने का भी समझौता किया है। कई मीडिया हाउस आपस में कंटेंट शेयर कर रहे हैं...मीडिया कारोबार की प्रकृति ऐसी है कि लोगों तक सूचनाएँ , समाचार और विचार चंद मीडिया समूह ही पहुँचा रहे हैं और ये मीडिया समूह काफी बड़े हैं (मंडल, दिलीप 2011)।''

वर्तमान में भारतीय मीडिया एक तरह के संक्रमण काल से गुजर रहा है। मीडिया कंपनियाँ विदेशी पूँजी के सहारे चल रही हैं जिनके लिए सभी तरह से मुनाफा ही एक मात्र लक्ष्य है। लगातार मजबूत होते कॉरपोरेट समूह देश की राजनीति और अर्थव्यवस्था को भी कंट्रोल करते नजर आ रहे हैं। वर्तमान में इन समूहों का किसी एक माध्यम में संकेंद्रण तो है ही तथा क्रॉस मीडिया निवेश के कारण इनका वर्चस्व बढ़ रहा है। यह प्रवृत्ति केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए ही चिंताजनक नहीं बल्कि विविधता के लिए भी है। उदाहरण के लिए सन, ईसेल, जी, स्टार इंडिया, ईनाडु, इंडिया टुडे, एबीपी, मलयाला, नेटवर्क 18 व एचटी मीडिया समूह ऐसे हैं जिन्होंने विविध माध्यमों (प्रिंट, टीवी, केबल आदि) में निवेश किए हैं। यह सीधे तौर पर क्रॉस ओनरशिप को दर्शाता है। इसका जिक्र TRAI के विमर्श पत्र में है। विगत डेढ़ दशकों में मीडिया जिस तरह एकाधिकार की तरफ बढ़ा है ऐसी स्थिति में इसके नियमन और नियंत्रण संबंधी मुद्दों पर भी प्रश्न उठने लगे हैं। फरवरी 2013 में टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया (TRAI) की मीडिया ओनरशिप संबंधी कंसल्टेशन पेपर में यह बात सामने आई है कि किस तरह कुछ समूहों के नियंत्रण में पूरा मीडिया उद्योग है तथा मीडिया मार्केट में कुछ समूहों का वर्चस्व लगातार बढ़ रहा है। कॉरपोरेट स्वामित्व के साथ–साथ धार्मिक व्यक्तियों, संस्थाओं और राजनीतिज्ञों के मीडिया स्वामित्व पर भी चर्चा की गई है।

मीडिया से संबंधित ट्राई का यह कोई पहला अध्ययन नहीं है इससे पहले भी कई अध्ययन हो चुके हैं। फरवरी, 2009

में ट्राई ने सरकार को अपनी रिपोर्ट दी जिसमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सभी तरह के जुड़ाव, क्रॉस स्वामित्व आदि के सवालों के बारे में जानकारी थी। ट्राई ने अपनी अनुशंसा में कहा कि "विलय व अधिग्रहण संबंधी नियमों का बनाया जाना जरूरी हो गया है,क्योंकि मीडिया में एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ी हैं। वर्तमान में कुछ ही मीडिया घराने सभी तरह के माध्यमों (टीवी, रेडियो व प्रिंट आदि) को चला रहे हैं। एकाधिकारी प्रवृत्ति को रोकने लिए उसने कानूनी–पाबंदी की भी बात की गई है (ट्राई, कंसल्टेशन पेपर, फरवरी 2013)।'' रिपोर्ट में कहा गया है कि "मीडिया घरानों का नियमन जरूरी है और जनता के हित में है। यह विचारों की विविधता और वस्तुनिष्ठता को सुनिश्चित करता है।" वर्तमान समय में विविध मीडिया माध्यमों का वह क्षेत्र जिसमें भारत के डीटीएच (DTH) और निजी एफएम (FM) चलाने वाली कंपनियों के लिए तो नीति नियम हैं लेकिन ब्रॉडकास्टर, केबल ऑपरेटर और पब्लिशिंग कंपनियों पर किसी तरह के नीति–नियम बने ही नहीं हैं इसलिए नीति–नियम बनाया जाना जरूरी हो जाता है। ऐसा नियम इसलिए जरूरी हो गया है कि प्रिंट कंपनियों द्वारा टीवी प्रसारण, इंटरनेट और रेडियो का भी संचालन किया जा रहा है। ट्राई ने अपनी रिपोर्ट में यूके, अमेरिका, साउथ अफ्रीका, फ्रांस, साउथ कोरिया, कनाडा व आस्ट्रेलिया आदि देशों में उपस्थित क्रॉस–मीडिया ओनरशिप और मीडिया स्वामित्व संबंधी नियमों की चर्चा की है। उदाहरण के लिए "अमेरिका में किस विशेष क्षेत्र में ब्रॉडकॉस्ट अर्थात टीवी एवं रेडियो चैनलों के स्वामित्व व नियंत्रण के लिए सीमाएँ या कुछ कानून हैं (ट्राई, कंसल्टेशन पेपर, फरवरी 2013)।'' इस रिपोर्ट में जरूरी कदम उठाने पर जोर दिया गया है। ट्राई की रिपोर्ट से मीडिया समूहों में बहस छिड़ी है। मीडिया समूह इस रिपोर्ट पर सरकार को कार्रवाई करने से बचने को कह रहे हैं। उनका मानना है कि अगर सरकार ऐसा करती है तो अभिव्यक्ति की आजादी प्रभावित होगी। इसके पहले जब ट्राई अपनी रिपोर्ट तैयार कर रही थी उसी समय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज ऑफ इंडिया (हैदराबाद) से एक अध्ययन कराने का फैसला किया। उसे भी इस बात की जाँच करनी थी कि क्रॉस–ओनरशिप, वर्तमान में मौजूद नियामक संरचना और इससे जुड़े बाजार आदि की वास्तविकता क्या है।

ट्राई ने वर्ष 2009 में अपनी रिपोर्ट दी और इस बात की अनुशंसा की कि क्रॉस मीडिया ओनरशिप की दृष्टि से प्रसारण, प्रिंट एवं न्यूज मीडिया (चैनलों) के लिए जरूरी कानून बनाए जाने चाहिए, क्योंकि किसी खास बाजार में एक ही मीडिया का वर्चस्व है और यह लगातार बढ़ रहा। इसके अलावा मीडिया में व्याप्त 'पेड न्यूज' से संबंधित गठित सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी स्थाई समिति की रिपोर्ट पेश की गई है। संसद की यह रिपोर्ट मीडिया की आंतरिक स्थितियों की समीक्षा करती है। कई कारणों से यह रिपोर्ट अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस रिपोर्ट में पेड न्यूज व ओनरशिप से संबंधित कई सुझाव दिए गए हैं। समिति ने पाया है कि पिछले दो दशकों के दौरान मीडिया में कॉरपोरेट घराने बने हैं वे सिर्फ मुनाफे की तरफ बढ़ रहे हैं। इस कारण मीडिया की स्वतंत्रता, स्वायत्तता में कमी आई है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में पत्रकारों की स्वतंत्रता छिन गई है। समिति ने इसलिए 'मीडिया आयोग' का गठन किए जाने की जरूरत बताई है। इन सभी मुद्दों को लेकर मीडिया घराने किसी भी नियम व नियंत्रण का विरोध कर रहे हैं। उनका तर्क है कि इससे मीडिया का विकास रुक जाएगा।

उम्मीद थी कि लोकतंत्र जैसे–जैसे मजबूत होगा वैसे–वैसे मीडिया भी स्वायत्त होगा और सही मायने में लोकतांत्रिक प्रणाली को मजबूती देने में मदद करेगा। यह प्रक्रिया कुछ समय तक चली भी लेकिन वर्तमान परिदृश्य एकदम अलग है। स्वतंत्रता के बाद भारत में मीडिया की आजादी और नियमन को लेकर एक लंबे समय से बहस चल रही है। ऐसा माना जाता है कि मीडिया की स्वतंत्रता, लोकतंत्र को और मजबूत बनाती है, पर वास्तव में ऐसा है क्या? जो मीडिया से अपेक्षा की जाती है। पिछले दो दशकों में मीडिया का असीमित विस्तार हुआ। सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक स्तरों पर आए परिवर्तनों, देश में फैले सांप्रदायिकता, जातिवाद व अन्य संवेदनशील मामलों से यह काफी हद तक प्रभावित हुआ है। मीडिया ने देश के लिए क्या एक दर्पण का कार्य किया या सिर्फ प्रोडक्ट व बाजार की वस्तु बन कर रह गया ? यह बड़ा सवाल है । मीडिया में फैले पेड न्यूज व प्राइवेट ट्रीटी जैसी प्रवृत्तियों का भी विस्तार हुआ जो मीडिया को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभावित कर रही हैं। ये सभी मुद्दे मीडिया की स्वतंत्रता और नियामक संस्थाओं पर सवाल खड़ा करते हैं।

भारत में लगभग सभी मीडिया समूह अपने ऊपर लगाए जाने वाले स्वामित्व और नियंत्रण के नियमों से अलग रहना चाहते हैं। ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जिसमें मीडिया कंपनियों और कॉरपोरेट घरानों के बीच घालमेल है और राजनीतिज्ञ मीडिया की ताकत का दोहन करते हुए नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। ''विशेष रूप से उन निर्णयों को जो कॉरपोरेट घरानों के हित में हैं इसलिए मीडिया घरानों का नियमन जरूरी है और जनता के हित में है। यह विचारों की विविधता और वस्तुनिष्ठता को सुनिश्चित करता है'' (व्यक्तिगत साक्षात्कार : ठाकुरता, प्रांजय गुहा, 2016)।'' प्रश्न यह है कि क्या

मीडिया को स्वतंत्र छोड़ा जा सकता है या फिर इसके भी नियमन की जरूरत है। मीडिया नियमन पर लंबे समय से बहस चल रही है लेकिन इस प्रक्रिया की विश्वसनीयता और स्वीकार्यता की स्थापना के लिए उचित समय दिया जाना जरूरी है। मीडिया में आज जो चल रहा है उसे देखते हुए यह जरूरी है कि इसके नियमन पर बहस हो लेकिन यह भी देखना उचित होगा कि कहीं से भी अभिव्यक्ति की आजादी प्रभावित न होने पाए। मीडिया के संदर्भ में वरिष्ठ पत्रकार राम बहादुर राय कहते हैं–"मीडिया इन दिनों कॉरपोरेट घरानों के लिए काम कर रहा है। हम जानते हैं कि ये घराने एक ही लक्ष्य से प्रेरित होते हैं। वह है मुनाफा इसलिए यह देखने की जरूरत है कि मुनाफे से प्रेरित मीडिया क्या अपना मूल काम सही से कर पा रही है। अगर वह अपना मूल काम करे तो नागरिक को निर्णय लेने में मदद मिलेगी। हाल ही में जो ट्राई ने रिपोर्ट दी है उसमें मीडिया के एकाधिकारी वर्चस्व का खुलासा हुआ है। इसके रिपोर्ट से मीडिया के मुनाफे का आकार–प्रकार का भी पता चलता है। आज मीडिया में पेड न्यूज, पेड चैनल, कॉरपोरेट एवं पॉलिटिकल लॉबिंग, खबरों में राजनीतिक भेद भाव, गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग, गैरबराबरी को बढ़ाना, विदेशी पूँजी का प्रभाव व एकाधिकारी घरानों की मनमर्जी आदि चल रही है। इन सब के संकेत ट्राई की रिपोर्ट में भी हैं इसलिए इसका पूरा खुलासा जरूरी है और यह काम तीसरा प्रेस आयोग ही कर सकता है (व्यक्तिगत साक्षात्कार : राम बहादुर राय, 2016)।'' मीडिया से अपेक्षा की जाती है कि वह जनसरोकारों के मुद्दों को प्रमुखता से प्रसारित करे। हमारे समाज में जो शोषित, लाचार वर्ग से हैं उनकी आवाज को उठाए तथा सरकार और जनता के बीच में एक कड़ी का काम करे। जरूरत पड़ने पर जनमत का दबाव भी बनाए पर वर्तमान स्थिति एकदम अलग है मीडिया एक तरह से पूँजी का खेल है और पूँजी हमेशा एकाधिकारी प्रवृत्ति को तरफ बढ़ती है। इसलिए समय– समय पर इसका विश्लेषण व आकलन करना आवश्यक हो जाता है। दरअसल वर्तमान में जो कुछ भी मीडिया जगत में चल रहा है वह सामाजिक सरोकार से कोसों दूर है। आज मीडिया कॉरपोरेट से चल रहा है और इस पर कुछ बड़े समूहों का एकाधिकार है जिनका उद्देश्य केवल मुनाफा तक ही सीमित नजर आता है। इसलिए जरूरी हो जाता है कि मीडिया के नियमन पर भी विचार हो और यह विचार जबतक सरकार की तरफ से नहीं होता तब तक कॉरपोरेट मीडिया अपनी गैर जिम्मेदाराना हरकतों को करता रहेगा। वर्तमान समय में यह भ्रम तोड़ने की जरूरत है कि मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तभ है। यह आज कॉरपोरेट का स्तभ बनकर रह गया है जिसका मूल उद्देश्य मुनाफा और केवल मुनाफा कमाना ही है।

संदर्भ सूची

- धूलिया, सुभाष, *सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा,* ग्रंथशिल्पी (इंडिया) प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, प्रथम, 2001
- कुमार, विनीत, *मंडी में मीडिया,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
- मण्डल, दिलीप, *कॉरपोरेट मीडिया : दलाल स्ट्रीट,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
- पारख, जवरीमल्ल, *जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य,* ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, संस्करण, प्रथम, 2000
- राय रामबहादुर (सं.), *काली खबरों की कहानी,* रेमाधव पब्लिकेशन्स,गाजियाबाद, संस्करण, प्रथम, 2010
- चतुर्वेदी, जगदीश्वर, सिंह, सुधा, *भूमंडलीकरण और ग्लोबल मीडिया,* अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008.
- नोम चॉमस्की, *जनमाध्यमों का मायालोक,* ग्रंथशिल्पी (इंडिया) प्रकाशन, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली

पत्रिकाएँ

- काटजू ,मार्कण्डेय : *द हिंदू,* अँग्रेजी दैनिक समाचारपत्र में लेख दिनांक– 05 नवंबर, 201
- मिश्र, अच्युतानन्द (सं.), *मीडिया मीमांसा,* अक्टूबर–दिसंबर, 2008, भोपाल
- बिष्ट, पंकज (सं.), *समयांतर,* फरवरी, 2011, सितंबर, 2011 व सितंबर 2010, नई दिल्ली
- राय रामबहादुर (सं.), *प्रथम प्रवक्ता,* 9 जुलाई, 2009 व जून, 2013, नई दिल्ली

वेब पोर्टल

www.newsmillenniumresearch.org
www.sebi.gov.in
www.thehindu.com
www.tri.gov.in

रिपोर्ट्स

- प्रथम एवं द्वितीय प्रेस आयोग की रिपोर्ट के कुछ अंश।
- कोड ऑफ एथिक्स, एनबीए
- भारतीय प्रेस परिषद् की वार्षिक रिपोर्ट, 2007–08
- सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी स्थायी समिति 15वीं लोकसभा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, पेड न्यूज से संबंधित मुद्दे, 47वां प्रतिवेदन, लोकसभा सचिवालय, मई 2013, राव इंद्रजीत सिंह, चेयरमैन स्थायी समिति।
- टेलिकाम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया (ट्राई), 2009 व 2013

साक्षात्कार

- प्रो. रामशरण जोशी, वरिष्ठ पत्रकार
- श्री रामबहादुर राय, वरिष्ठ पत्रकार एव अध्यक्ष इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली
- डॉ पॉरंजय गुहा ठाकुरता, अर्थशास्त्री एवं संपादक ईपीडब्ल्यू

रवि की धीमी उड़ानः मानसिक मंदता के विशेष संदर्भ में

निलामे गजानन सूर्यकांत

समस्या बोध

सुरेश और सीमा अपने आठ साल के बच्चे रवि को लेकर काफी चिंतित थे। वो आम बच्चों की तरह नहीं था। शिशु अवस्था से ही उसके साथ दिक्कतों को उन्होनें देखा था जैसे– देर से चलना, बैठना, बोलने में धीमापन किंतु इन सारी समस्याओं को सामान्य मानकर उन्होनें नजरअंदाज कर दिया था। परंतु जब आज आठ साल का हो गया है तब उन्हें यह चिंता खाए जा रही है कि रवि को कैसे पढ़ाया जाए। चार साल से ही उसे किसी न किसी तरह आंगनवाड़ी, नर्सरी में दाखिला करवाया परंतु उसे संभाल पाने में वहां के कर्मी असमर्थता दर्शा रहे हैं और दूसरी बात यह कि उसे इस तरह घर से दूर रखने के कारण रवि और 'शांत' (सामान्यतः इस उम्र में बच्चे ऐसे नहीं होते है।) हो रहा है। सुरेश अपनी नौकरी के कारण पूरा दिन घर से बाहर होता है और रवि की पूरी जिम्मेदारी सीमा पर आ जाती है। अपनी बड़ी बेटी के साथ–साथ उसे रवि को भी दिन भर संभालना पड़ता है। रवि के हर काम में उसको मदद की आवष्यकता होती है। इस कारण सीमा का सामाजिक जीवन कष्टमय हो गया है। खैर, रवि के लगाव के कारण तथा पढ़ी लिखी होने से सीमा उसका सारा काम निपटाती है परंतु असल समस्या उसकी शिक्षा को लेकर है। वे लोग उसे पढ़ाना भी चाहते हैं और इसके लिए उन्होने कुछ लोगों को घर पर आकर कोचिंग के लिए मना लिया परंतु आज तक कोई लंबे समय तक नहीं टिक पाया।

असल में वे लोग आज तक यह नहीं समझ पाएं है कि रवि को हुआ क्या है? तीन वर्ष की आयु में डाक्टर ने कहा था कि रवि मानसिक रुप से थोड़ा कमजोर है। यह धीरे–धीरे ठीक हो जाएगा किंतु माता–पिता अन्य बच्चों को देखते हैं तो बड़ी निराशा महसूस करते हैं। दस साल की बड़ी बेटी रीना पर वो रवि के कारण ज्यादा ध्यान नहीं दे पा रहे हैं।

समस्या की पहचान

हाल ही में सुरेश के सहयोगी द्वारा स्कूल परामर्शदाता से मिलने की सलाह पर दोनों सोच विचार कर रहे है और उन्होनें फैसला कर लिया कि वे उससे मुलाकात करेंगे। स्कूल परामर्शदाता सुरेश के सहयोगी के रेफरेंस के कारण उसने अनौपचारिक तरीके से ही सुरेश और सीमा से मुलाकात की। पहली मुलाकात में पारिवारिक जानकारी, अनुवांशिकता तथा नौकरी–व्यवसाय की बातचीत के बाद रवि की समस्या का विवरण स्कूल परामर्शदाता ने प्राप्त किया। और दो दिन बाद आकर दूसरी मुलाकात का समय निश्चित कर उन्हे विदा किया।

निदान की ओर

दूसरे दिन की मुलाकात में परामर्शदाता ने पहले दिन की मुलाकात से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि आम तौर पर इस तरह के बच्चों के लिए अलग स्कूल चलाएं जाते हैं। वहां उन्हें अलग पद्धति से पढ़ाया जाता है। रवि को ऐसे स्कूल में दाखिला दिलवाया जा सकता है। इस उत्तर के बाद सीमा ने मन की शंका को फिर से परामर्शदाता के सामने रखा कि रवि को हुआ क्या है? यह तो पता चले। परामर्शदाता के पास इसका कोई सही/निश्चित जवाब नहीं था और न ही वो एक दिन के विवरण से किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहता था। इससे बचने के लिए उसने मनोचिकित्सक परामर्शदाता से मिलने की सलाह दी और साथ में संदर्भित करते हुए एक पर्चा लिखकर मनोचिकित्सक परामर्शदाता से फोन कर सुरेश की सहमति से उसके साथ मिलने का समय पक्का कर दिया।

मनोचिकित्सक परामर्शदाता शहर के नामांकित अस्पताल के मनोचिकित्सा विभाग में परामर्शदाता के पद पर कार्यरत है। इधर सुरेश और सीमा के सामने नई समस्या यह थी कि वे पते पर लिखे मनोरुग्नालय को पढ़ खुद को कलंकित महसूस करने लगे थे। सीमा तो यह भी कह रही थी कि मैं अपने बच्चे को पागलखाने नहीं ले जाऊंगी वो पागल थोड़ी ही है और अपनी इस बात को मनवाने के लिए वो अपने घरवालों से सुरेश को समझाने की जुगत में लगी थी। परंतु सुरेश एक पढ़ा लिखा समझदार व्यक्ति था वो जान रहा था कि अभी नहीं तो फिर कभी नहीं। सीमा को मनवाने के लिए उसने यह कहा कि अगर वहां तुम्हे कुछ गलत लगे तो हम लौट आएंगे किंतु जाना तो पड़ेगा। किसी तरह सीमा को राजी कर मिलनेवाले दिन के समय सीमा और सुरेश अपने साथ रवि को लेकर अस्पताल पहुँचे और परामर्शदाता से बातचीत शुरु कि....

परामर्शदाता ने स्कूल परामर्शदाता से फोन पर विवरण प्राप्त कर लिया था इसलिए इधर उधर की बातों के बाद उसने रवि की समस्या पर बात शुरु की। सुरेश ने रवि की समस्या का विवरण दिया साथ ही बीच–बीच में सीमा भी कुछ जोड़ती रही। अंत में परामर्शदाता ने दोनों को बड़े आराम से आश्वस्त कर यह बताया कि रवि के साथ क्या समस्या है ? इसको जानने के लिए और समय एवं कुछ पैसों की आवश्यकता पड़ेगी। साथ ही आपके सहयोग की भूमिका इसमें सर्वोपरि रहेगी। बीच में ही सुरेश ने अपनी पत्नी के संशय को परामर्शदाता के सामने प्रकट किया कि रवि पागल तो है नहीं फिर इसका इलाज यहां क्यों?

निदान

परामर्शदाता ने इसका जवाब बड़े सावधानी पूर्वक दिया और कहा कि रवि पागल नहीं हैं और नहीं यहाँ कोई पागल है। यहाँ मानसिक विकारों, विकृतियों एवं कमियों पर उपचार किया जाता हैं। आपका रवि ठीक हो जाएगा लेकिन वो किस हद तक और कैसे इसके लिए हमें कुछ परीक्षणों का सहारा लेना पड़ेगा अगर इसके फिर आप तैयार हैं तो हम आगे इलाज शुरु करें।

दो मिनट सीमा और सुरेश की बातचीत हुई और दोनों ने सहमति दर्शायी। परामर्शदाता ने अगली मुलाकात की तारीख तय कर उन्हें विदा किया।

दूसरी मुलाकात में परामर्शदाता ने पारिवारिक जानकारी, रोजमर्रा का जीवन तथा अनुवांशिकता संबंधी विवरण प्राप्त किया, साथ ही सीमा से गर्भावस्था के समय में किसी अनहोनी की जानकारी हासिल कर उन्हें विदा किया।

उपचार की ओर उन्मुख

तीसरी मुलाकात में परामर्शदाता ने सीमा और सुरेश से नहीं बल्कि रवि से बातचीत शुरु की। इसके लिए मनोचिकित्सक की सलाह से वो परामर्शदाता आज बुद्धिमापन परीक्षण कर रहा था। इसके लिए परामर्शदाता ने एक प्रश्नावली तैयार कर रखी थी जिसके जवाब वह रवि से प्राप्त करने लगा। जवाब प्राप्त करने के लिए परामर्शदाता को काफी जद्दोजहद करनी पड़ी। बीच–बीच में सुरेश और सीमा ने भी सहयोग किया और अंततः बुद्धिमापन परीक्षण पूर्ण किया गया। इस तरह तीसरी मुलाकात का समापन हुआ।

चौथी मुलाकात में आज परामर्शदाता ने परीक्षण से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण एवं मनोचिकित्सक की सलाह से समस्या का निदान ढूंढ़ने में कामयाबी हासिल की। सत्र के शुरुआत में इधर–उधर की बातों के बाद परामर्शदाता ने बुद्धिपरीक्षण के परिणाम के आधार पर बनी अपनी रिपोर्ट पेश की। पहले तो उसने यह बताया कि कल जो सवाल जवाब का सत्र था वह असल में बुद्धिमापन परीक्षण था और उसके परिणाम के अनुसार रवि मानसिक रुप से थोड़ा धीमापन महसूस करता है। जिस तरह के परिणाम है उसके अनुसार रवि मानसिक मंदता के मध्यम वर्ग में आता है। हालांकि इससे ज्यादा गंभीर और गहन मंदता के बच्चे भी होते हैं बीच में ही सुरेश ने टोका कि ये सब रवि के साथ ही क्यों इसके क्या कारण है? परामर्शदाता ने पहले से ही एक पर्चा निकाल के रखा था जिस पर मानिसक मंदता के लक्षण और कारण दिए गए थे। उसको सुरेश के हाथों में थमाते हुए परामर्शदाता ने बातचीत आगे बढ़ायी कि मानसिक मंदता के कारण कई सारे हो सकते हैं इस पर्चे में दिया गया है किंतु आपको सही–सही जानकारी चाहिए तो इसके लिए रवि के कुछ शारीरिक एवं मानसिक परीक्षण करवाने पड़ेगे जिससे सही जानकारी मिल सकती है।

मध्यम वर्ग परिवार होने के कारण सुरेश और सीमा परीक्षण का नाम लेते ही कुछ आशंकित महसूस करने लगे। इस बात को परामर्शदाता ने समझाते हुए दूसरा विकल्प सामने रखा कि क्यों ऐसा हुआ यह जानने से बेहतर यह हो सकता हैं कि इससे कैसे बचे अगर आप सहमत है तो इसके उपचार एवं उपाय–योजनाओं के कार्यक्रम पर हम चर्चा कर सकते हैं। आर्थिक कमजोरी से त्रस्त दाम्पत्य ने अपनी गर्दन हिलाकर सहमति जताई।

पांचवी मुलाकात की पूर्व तैयारी स्वरुप परामर्शदाता ने मानसिक मंदता से संबंधित अधिक से अधिक जानकारी हासिल की और मनोचिकित्सकों से रवि के मामले में सलाह मशविरा किया था। सत्र के शुरुआत में इधर उधर की बातें कर परामर्शदाता रवि के सुधार हेतु विकल्पों की बात करने लगे।

पहले तो परामर्शदाता ने यह बताया कि इस समस्या का कोई ठोस उपाय नहीं है लेकिन सुरक्षात्मक उपायों को अपनाकर हम रवि का भविष्य सुरक्षित कर सकते हैं इसलिए आप दोनों को ही इसकी जिम्मेदारी लेनी होगी। आपकी क्या भूमिका है? मैंने इस पर्चे में लिखा है फिर भी अगर आप प्रात्याक्षिक चाहते है या कुछ अन्य विकल्प चाहते है तो इसके लिए कुछ विकल्प भी उपलब्ध है।

रवि को विशेष विद्यालय में प्रवेश दें।

सामूहिक उपचार के लिए अस्पताल की इकाई में प्रवेश लें।

और हां सरकारी तौर पर ऐसे बच्चों के लिए विशेष योजनाएं एवं रियायतें प्राप्त होती हैं इसके लिए आप जिला अस्पताल से सर्टिफिकेट प्राप्त करके तथा www.disability.org/trustact.ls संपर्क करे इससे उचित जानकारी प्राप्त होगी।

साथ ही ध्यान रहे कि रवि को बाहरी समाज में घूमने फिरने दे लेकिन सुरक्षितता के साथ, आस पड़ोस को रवि संबंधी उचित जानकारी देकर सहयोग प्राप्त करें न कि इसको

छुपाएं।

इसकी जानकारी प्राप्ति के बाद सीमा सुरेश आश्वस्त हो गए और वे रवि के भविष्य की चिंता से थोड़ा हल्का महसूस करने लगे।

किंतु वे विकल्प क्या चुने इसके लिए उन्होने परामर्शदाता से समय मांगा और सत्र समाप्त हुआ।

छठी मुलाकात में सीमा और सुरेश सत्र के शुरुआत से ही कुछ ज्यादा उत्साहित दिखे। परामर्शदाता से पहले ही सीमा ने बातचीत शुरु की थी। कल के दिन में सोच विचार के बाद जो तय हुआ था। उसे वह बताना चाहती थी और अपनी समस्याएं भी बताना चाहती थी। शुरुआत में ही सीमा ने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली किंतु उचित प्रशिक्षण के लिए सामूहिक उपचार में प्रवेश की मांग रखी और साथ ही अपनी भूमिका संबंधी तथा कौशलों को सीखने के लिए आगे भी परामर्शदाता से मिलते रहने का वादा कर विदा ली।

अब सीमा सामूहिक उपचार केंद्र में प्रशिक्षण के बाद समझ गई है कि रवि के साथ कैसे व्यवहार किया जाए उसे कैसे सिखाया जाए अब वह धीरे–धीरे उसको भाषा, अंक का प्राथमिक ज्ञान दे रही है और रवि भी खेल–खेल में सब सीख रहा है। अगले साल रवि को विशेष विद्यालय में प्रवेश करवाना है उसकी तैयारी में वे अभी से लगे हैं।

✦ ✦ ✦

उत्तर आधुनिक हिन्दी रंगमंच

सतीश पावड़े

आज हिन्दी ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय रंगमंच के संदर्भ में उत्तर आधुनिकता की चर्चा बड़े पैमाने पर हो रही है। विगत कुछ वर्षो से राष्ट्रीय नाटय विद्यालय के भारतीय रंग महोत्सव में जिस प्रकार की प्रस्तुतियों की बाढ़ सी आ गयी उसके आधार पर उत्तर आधुनिक भारतीय रंगमंच का परिदृश्य उभर कर आ रहा है। हालांकि कोई भी निर्देशक, निर्माता अथवा रंगकर्मी जाहिर तौर पर उसका निरूपण उत्तर आधुनिक प्रस्तुति के रूप में नहीं कर रहा है। किंतु जो विशेषताएं अलगपन तथा नाट्य प्रस्तुतियों का स्वरूप प्रदर्शित किया जा रहा है, उत्तर आधुनिकता की परिकल्पना का प्रतिबिम्ब उसमें साफ तौर पर दिखाई दे रहा है।

सबसे पहली विशेषता 'भाषाई विखंडन' के रूप में दिखाई देती है। अगर हम भारंगम 2012 की बात करें तो सत्तर फीसदी नाटक या तो अभाषिक है या बहुभाषिक है। इन सारी प्रस्तुतियों में लेखक नदारद है। निर्देशकों की प्रभुता स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। बहुतांश नाटयकृतियॉ (प्रोव्हाईज्ड) है अथवा कार्यशालाओं की सामूहिक निर्मितियाँ है। आलेख के प्रति जो नजरिया है वह लगभग आलेख एवं पाठ को खारिज करनेवाला हैं जो उत्तर आधुनिक रंगमंच की अभिन्न, प्रभावोत्पादक विशेषता है। भाषा का विखंडन बहुस्तरीय है। भाषा को विखंडित कर दृश्यात्मक आलेख (Visual Text) के प्रति नये रंगकर्मियों का रूझान चर्चा का विषय है। साथ विन्यासन (Design) की परिकल्पना लेखन, निर्माणके बजाए सोच नजरिया, विचार, अनुभव (Thought, Approach, Experience) आदि का बडे पैमाने पर विन्यास किया गया है। इसे हम उत्तर आधुनिक नजरिये का विन्यासन (Design of Postmodern thought, Approach and Experience) कह सकते है। इसके अलावा कल तक केवल नाटक की विषयवस्तु बने परिधि के रूप में इन नाटकों में उपस्थिति दिखाई दे रहे है। चाहे वह सर्कस के कलाकार हो, वारांगणाए हो अथवा बौने लोग हो। वे अपना विखंडित यथार्थ खुद ही प्रस्तुत कर रहे है।

यहाँ बहस का मुद्दा यह है कि जो नाटयप्रस्तुतियॉ अभाषिक है, अथवा ध्वनि की भाषा, प्रकाश की भाषा, दृश्यविन्यास की भाषा में प्रस्तुत हो रही है। फिर उन्हें हिन्दी रंगमंच की प्रस्तुतियां क्यों कही जाए। इस पर रंगकर्मी तर्क देते है कि यह नाटयप्रस्तुतियां भले ही हिन्दी भाषा में नहीं अपितु वे सारे रंगकर्मी, उनकी संस्थाएं, निर्देशक हिन्दी भाषिक है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी उनकी मातृभाषा भी है। भारंगम भी भारतीयता बनाम हिन्दी अस्मिता को प्राथमिकता देती है। इनके अधिकतर प्रयोग भी भाषिक प्रदेश में होते है। बहरहाल हिन्दी नाटयालेख, नाटककार के समक्ष ऐसी प्रस्तुतियाँ चुनौती के रूप में उभरकर आ रही है। दुसरी और निर्देशकों की अथवा विन्यासकारों की सत्ता अधिक प्रभावी बन रही है। लेखक–निर्देशक के संबंधो पर, लेखक ओर रंगमंच के संबंधो पर यह परिदृश्य कई सवाल खडे करने वाला है। जो उत्तर आधुनिकता के रंगमंचीय सिद्धांतो की एक विशेषतः बताई जाती है।

इतिहास की मृत्यु, महानायक, महाख्यानो की मृत्यु, पात्र की मृत्यु या खंडन, ध्वनि की आलेख के रूप में प्रस्तुति, दृश्यों का कोलाज, नैरेटीव्ह फार्म का निषेध, एकालाप अथवा समूह की दृश्य रूप में स्थापना, शिल्पगत, विविधता, आलेख–परफार्मन्स का नया नजरिया, प्रयोगधर्म पर बल, किंतु उसमें भी विखंडन विसरंचना का आग्रह, दृश्य विन्यास में चित्र, कटआऊट्स, शिल्प, इन्स्टॉलेशन, मल्टीमीडिया, त्रिमितिक दृष्टिकोण का स्वीकार, नाटयतत्वों का और नाटयतत्व में बिखराव, भावावस्था का भाषावस्था में ही दृष्याकंन, रोजमर्रा के जीवन में उपर्युक्त विविध उपकरण, भाण्ड, उपादन, रंगो का अवस्थानुकूल प्रयोग, समय सीमा का अ–निर्धारण, देहभाषा, मूकभाषा, वातावरण–पर्यावरण की भाषा, रंगतंत्र की विशेषताएं अथवा परिचयात्मक तत्व इन नाटयप्रस्तुतियों में परिलक्षित हुए, जिन्हें उत्तर आधुनिकतावादी रंगचिन्तक उत्तर आधुनिक रंगमंच की विशेषताएं अथवा परिचयात्मक तत्व (Identical Elements) के रूप में निरूपित करते है। यहाँ खास बात यह है कि ये सारे तत्व, सारी इकाईयाँ नाटयमंचन, नाटयप्रयोग, नाट्यप्रस्तुति के रूप में निरूपित किए गए हैं। यहा नाटयालेख (Script or Text) का विचार गौण माना गया है। केवल प्रदर्शन (Performance) ही उत्तर आधुनिक रंगमंच का नजरिया है, साधन है और साध्य भी। परफार्मन्स ही विषय है, परफार्मन्स ही आशय है,

परफार्मन्स ही दृष्टिकोण है, परफार्मन्स ही कथ्य है, परफार्मन्स ही तथ्य है।

यह आजकी रंगमंचीय भाषा (Theatrical Language) है। भूमंडलीकरण के प्रक्रिया से निर्मित वर्चस्व, प्रभुता के मूल्य (hegemonic Values) प्रणाली को तोडने के लिए यह रंगमंच प्रति–प्रभुता (counter Hegemony) की व्यवस्था को जन्म दे रहा है। क्या ग्राहक बने समाज को, दर्शको का यह रंगमंच भ्रम, तृष्णा, भोगवाद के चक्रव्यूह से बाहर निकालने में कारगर सिद्ध होगा? क्यों कि न इसमें ॲब्सर्ड थिएटर, न एपिक थिएटर, न ऑप्रेस्ड थिएटर आदि की मूल्यवस्था दिखाई देती है। न प्रतिरोध के स्वरों की एकात्मता (Unity of Resistance) दिखाई देती है। (इसमें कुछ अपवाद जरूर है, जिसमें मैं विशेष रूप से 'मिराज' नाटक उल्लेख करना चाहुंगा। जिसने कालीदास के ऋतुसंहार का परिप्रेक्ष्य, मायना, प्रतिमा, जड.से ही बदलदी है। ऋतुयों के विखंडन की यह एक सटीक प्रस्तुति है।

इस परिकल्पना का जन्म एकायक नहीं हआ। विगत कई वर्षोसे यह प्रक्रिया चलती रही है। बादल सरकार का 'भोमा', रतन थिएम का 'प्रोलॉग' विजय तेंडूलकर का 'सफर', नियतीच्या बैलाला, उदय प्रकाश का 'मोहनदास', मकरंद साठे का 'ते पूढे गेले' श्याम मनोहर का 'दर्शन' महेश एलकुंचवार का 'युगांतर' नदिरा बब्बर का 'फुट, नोट्स ऑफ लाईफ', भगवान हिरे का 'एक बार फिर गोदो', श्रीकांत सराफ का 'नत्था खड़ा बाजार में' आदि भारतीय नाटको में उत्तर आधुनिकता के आलेखात्मक, प्रदर्शनात्मक तत्व देखे जा सकते है। भूमंडलीकरण के प्रति कथ्यात्मक, तथ्यात्मक प्रतिरोध हम इन नाटकों में देख सकते है। इन नाटको में नायक, आदर्शो का विखंडन साफ तौर पर देखा जा सकता है। एक बार फिर गोदो' में जगन्नायक गोदो अथवा गॉड की हत्या कर दी जाती है। नाटयालेख के स्तर पर भी उत्तर आधुनिकता के कथ्य तथा तथ्य स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। कई नाटककार इस विघटन को आलेखित कर रहे है। बहुभाषा, पिडगीन (हायब्रीड) भाषा के स्तर पर वह परिलक्षित हो रहा है। परंतु गत दशक में अभाषिक आलेख, या पाठ्य को नकारने की प्रवृतियाँ मंचन की आजादी के नाम पर बढ़ी है। जो हमारी चिंता का चुनौतियाँ का विषय बनता जा रहा है। क्या यह नया रंगमंच हमारे सौंदर्यबोध को भी बदल सकता है। डॉ. रवि श्रीवास्तव इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप से देते है, ''उत्तर आधुनिक समाज एक सम्पूर्ण कमोबेश, जीवनशैली, एवं सांस्कृतिक व्यवहार भी है। जिसने हमारी भाषा, साहित्य कला और संस्कृतिबोध एवं सर्वोपरी रूप से हमारी सौंदर्यभिरूचि अथवा सौंदर्यबोध तक को बदलने में सफलता हासिल की है।'' (XV) (उत्तर आधुनिक विभ्रम और यथार्थ) किंतु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। हमारा सौंदर्यबोध अब भी रस, भाव, विरेचन जैसे पारम्परिक सिद्धांतो से जुडा है। 'विखंडन' का सौदर्यबोध हमारी मानसिकताएँ, हमारा दर्शन, हमारे संस्कार शायद ही व्यापक और सार्वत्रिक स्तर पर स्वीकारा जा सकता है। शायद ही आम दर्शक इस रंगमंच से अपना तादात्म्य स्थापित कर सके। अतियथार्थवाद ही रंगमंच में स्थापित नहीं हो पाया तब यह 'हायपर' यथार्थवाद क्या अपनी जडे जमा पायेगा। बरबस यह प्रश्न मेरे जहन में भी पैदा हुआ है।

चुनौतियाँ :

औद्योगीकरण की प्रक्रिया में आधुनिकता ने जन्म लिया। वैसे ही भूमंडलीकरण ने उत्तर आधुनिकता के विचार को जन्म दिया। इसलिए उत्तर आधुनिकता का विचार हमें भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, उपभोगवाद, संचार क्रांति आदि के परिप्रेक्ष्य में करना अनिवार्य होता है। इन तत्वों ने आचार, विचार, जीवनशैली ही नहीं बदली बल्कि उसे नियंत्रित कर रखा है हमारा अस्तित्व, हमारा परिचय अब केवल एक ग्राहक उपभोक्ता तक सिमट गया है। हमारी क्रयशक्ति हमें स्थापित करेगी या विस्थापित तात्पर्य एक होड सी लगी है, क्षमता हो अथवा ना हो, ग्राहक बनने की अपरिमित तृष्णाएँ लिए यह ग्राहक के गर्त में खोता जा रहा है। यह स्थिति चितांजनक है। मानवीय संबंध, मानवीय मूल्य, प्रकृति से जुडे प्रश्न, आतंक, आत्मकेन्द्रित वृत्तियों का जन्म, बेटरमेंट की होड, तात्कालिकता के तत्व, संचार, सम्प्रेषण के बदलते मायने, तरीके, भोगवादी वृत्तियों का उफान, लैंगिकता के प्रश्न, आज उत्तर आधुनिकता के परिचायक बन गए हैं।

इसी परिप्रेक्ष्य में आज के हिन्दी रंगमंच की आलोचना अत्यावश्यक बन जाती है। क्या यह रंगमंच उत्तर आधुनिकता से प्रभावित हो रहा है? क्या विखंडना का प्रतिबिंब हिन्दी रंगमंच में देखा जा सकता है? क्या यह प्रतिरोध का रंगमंच है या फिर प्रतिक्रिया का रंगमंच है? या शनैः शनैः बनती चली जा रही फैशन है। यह थिएटर किसी आस्था, प्रतिबद्धता को मानता भी है। या केवल परफार्मन्स हेतु रंगतंत्र के केवल नए आयामों का अविष्करण किया जा रहा है। सृजनशील प्रेरणा (Creative Instinct) का कोई तत्व इस रंगमंच में है या केवल तांत्रिक प्रयोगधर्मिता (Technical Experimentalism) की यह जरूरत है, इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी रंगमंच का क्या भविष्य होगा? क्या नाटककार को प्रस्तुतिकरण के सीमा से बाहर कर दिया जाएगा? क्या यह रंगमंच मुख्य प्रवाह का रंगमंच बनेगा? या कास्मोपालिटन, मेटोपालिटन शहर की एक 'फास्ट फूड' जैसी जरूरत बन जाएगी। इसे प्रयोगधार्मिता कहने के पश्चात क्या अन्य प्रयोगधर्मिता के द्वार बंद हो जाएंगे। ऐसे कई सवाल हमारे जेहन में खड़े हो

रहे है। भारंगम तथा उसके जैसे नाटय समारोह, सरकारी प्रोजेक्ट, फेलोशिप, मल्टीनॅशनल कंपनियों की स्पॉन्सरशिप, योरोपीय देशों से प्राप्त फंडिग, विविध नाटय स्पर्धाओं में 'कुछ अलग, हट के प्रस्तुति के रूप में बॉटे जा रहे पुरस्कार इस थिएटर का महत्व निश्चित बढा रहे है। निर्देशक विन्यासक, संस्थाएं प्रतिष्ठित हो रही है। किंतु क्या मौलिकता, प्रतिबद्धता, गंभीरता, प्रभावोत्पादकता, संस्कार क्षमता, साहित्यिक मूल्य, रंगमंचीय मूल्य आदि के संदर्भ में गंभीरतापूर्वक सोचा जाएगा? हिन्दी ही क्यो? सभी भाषाई रंगमंच के समक्ष यह चुनौतियाँ खड़ी हो रही है। भारतीय मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में इस उत्तर आधुनिक रंगमंच की समीक्षा होना जरूरी है। नकारात्मक ही क्यों। एक 'फेझ' एक प्रसंग, एक समय, एक कालखंड, एक स्थिति के रूप में हम सकारात्मक दृष्टि से भी ऐसे रंगमंच को देख सकते है। समय, परिवेश, दर्शक, उसकी प्रासंगिकता, समकालीनता, तय कर सकते है। क्यो ना एक 'प्रयोग' (Experiments) के रूप में देखे? बाकी समय के साथ उसका भविष्य तो तय होगाही।

✦ ✦ ✦

हिंदी की लिंग व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

अम्ब्रीश त्रिपाठी एवं आम्रपाल शेंदरे

भूमिका

भाषा की व्याकरणिक कोटियों में लिंग की कोटि का बहुत महत्त्व है। संज्ञा की अन्य कोटियों जैसे–वचन, कारक,आदि की तुलना में लिंग की कोटि मूलभूत मानी जाती है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से लिंग से तात्पर्य 'व्याकरणिकशब्दगत लिंग' से लिया जाता है, जिसे फोडर, जेस्पर्सन आदि विद्वानों ने 'संदर्भरहित अर्थहीन भाषिक रूप' कह कर परिभाषित किया है। यह परिभाषा भारोपीय परिवार की उन भाषाओं के लिए ही अधिक सार्थक है जहाँ व्याकरणिक चिह्नों का प्रयोग पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग वर्ग में भेद स्थापित करने के लिए किया जाता है। हिंदी की लिंग व्यवस्था व्याकरणिक विश्लेयषण की स्थिति में अपेक्षाकृत कम रही है इसका कारण यह है कि हिंदी के लिंग निर्धारण का कोई सटीक आधार नहीं मिल पाया है। उदाहरणार्थ यह देखा जा सकता है कि मानव के पौरुष–प्रदर्शन के महत्त्वपूर्ण अंग और प्रतीक मूँछ, फौज, बन्दूक, दाढ़ी, आदि स्त्रीलिंगी होते हैं। यही सब कुछ ऐसे आधारभूत बिन्दु हैं,जिनको देखने के बाद आज हिंदी–लिंग व्यवस्था पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। इस आलेख को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में लिंग व्यवस्था परिभाषा एवं स्वरूप' के अंतर्गत लिंग के परिभाषा की पृष्ठभूमि और स्वरूप पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। द्वितीय भाग 'संज्ञा और लिंग व्यवस्था' जिसमें लिंग के नियमों का उल्लेख किया गया है और किस तरह पुल्लिंग स्त्रीलिंग में और स्त्रीलिंग पुल्लिंग में परिवर्तित होता है यह भी दर्शाया गया है। इसमें दो भाग किए गए हैं, प्राकृतिक लिंग व्यवस्था और व्याकरणिक लिंग व्यवस्था, जिसमें व्याकरणिक लिंग को तीन भागों में विभाजित किया है, ध्वन्यात्मक आधार, रूपात्मक आधार, अर्थात्मक आधार। हिंदी में किस प्रकार सर्वनाम, विशेषण, क्रिया के आधार पर लिंग में परिवर्तन होता है। इसका अध्ययन तीसरे भाग 'हिंदी सर्वनाम,विशेषण और क्रिया की लिंगगत अन्विति' के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन भावी समय में संभावनाओं के नए द्वार खोलने में सहायक होगा।

लिंगव्यवस्था

भाषा में लिंग एक प्रमुख व्याकरणिक कोटि है, जिसका अपना महत्त्व होता है। मनुष्यों तथा पशु–पक्षियों में लिंग की स्थिति स्पष्ट होती है। पुरुष , स्त्री, लड़का, लड़की, माता, पिता आदि शब्दों में लिंग पदार्थ के स्वाभाविक धर्म के रूप में सामने आता है। निर्जीव वस्तुओं में जहाँ ये दोनों लिंग नहीं होते वहाँ एक तीसरा लिंग है, जिसको नपुंसक लिंग कहा जाता है।

अनेक भाषाओं में इस स्वाभाविक लिंग (sex) के स्थान पर व्याकरणिक लिंग (Grammatical Gender) का आधार लिया जाता है। जैसे– संस्कृत में 'देवता' शब्द का प्रयोग इन्द्र, वरूण, शनि , राहू आदि के लिए होता है। ये पुरुष हैं, लेकिन 'देवता' शब्द को स्त्रीलिंग माना जाता है। 'दारा' शब्द का अर्थ 'पत्नी' है किन्तु यह पुल्लिंग शब्द है। दोस्त के अर्थ में 'मित्र' शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत में इसको नपुंसकलिंग कहते हैं। निर्जीव पदार्थों के वाचक शब्दों के लिंग को जानने में कठिनाई पैदा होती है। उदाहरण के लिए हिंदी के शब्द 'पत्थर', 'किताब' आदि निर्जीव वाचक हैं लेकिन ये सब पुल्लिंग शब्द हैं। 'नदी', 'पुस्तक', 'आग', आदि शब्द निर्जीव वाचक हैं लेकिन ये सभी स्त्रीलिंग हैं।

अंग्रेजी, तमिल आदि भाषाओं में कहा जाता है कि इन भाषाओं की लिंग व्यवस्था अर्थ पर आश्रित है। लेकिन वहाँ भी प्राकृतिक लिंग और व्याकरणिक लिंग में अन्तर है। पशु–पक्षियों में स्त्री पुरुष का भेद स्वाभाविक है। किन्तु किसी–किसी भाषा में पशु–पक्षियों के वाचक शब्दों को नपुंसकलिंग माना जाता है, जिसका कारण यह है कि पशु–पक्षी नर या मादा होते हैं, फिर भी वक्ता उनके स्वाभाविक लिंग की विवक्षा नहीं करता क्योंकि अंग्रेजी का ''Bird'' नपुंसकलिंग का शब्द है, किन्तु लिंग की विवक्षा करें तो उसे पुल्लिंगी अथवा स्त्रीलिंगी कहेंगे।

लिंग–व्यवस्था के सम्बन्ध –

लिंग–विधान जनसामान्य में तो प्राकृतिक ही रहा, परन्तु साहित्य में व्याकरणिक हो गया, जिससे लिंग दो प्रकार के हो गए–

1– प्राकृतिक लिंग

2– व्याकरणिक लिंग।

प्राकृतिक लिंग–

संज्ञा (शब्द)

↓

प्राणिवाचक (चेतन)

↓ ↓

मानव (पुरुष,स्त्री, आदि) | मानवेतर (शेर, भालू, कबूतर आदि)

प्राकृतिक लिंग से तात्पर्य है,चेतन में जो संज्ञा स्वभावतः पुरुष जाति की है वह पुल्लिंग है, जो स्त्री जाति की है वह स्त्रीलिंग है और शेष नपुंसकलिंग। जैसे–पिता पुल्लिंग, माता स्त्रीलिंग, पुस्तक नपुंसकलिंग। डॉ. सूरजभान सिंह के अनुसार–''प्राकृतिक लिंग (Sex) लौकिक जगत की कोटि है जो व्याकरणिक लिंग के अनुरूप भी हो सकती है और भिन्न भी। भाषाओं में प्राणिवाचक शब्द अक्सर प्राकृतिक लिंग का अनुसरण करते हैं।''1 डॉ. वी.डी.हेगडे के अनुसार–''प्राकृतिक लिंगवाली व्यवस्था के अनुसार चेतन पदार्थ पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में विभक्त हैं और चेतन पदार्थ नपुंसकलिंग के अंतर्गत आते हैं। यथा–man (पुल्लिंग), woman (स्त्रीलिंग) और town (नपुंसकलिंग)''2 कविता रस्तोगी के अनुसार–''लोक–व्यवहार की दृष्टि से लिंग का तात्पर्य है किसी वस्तु या उपादान का लिंग जो नर या मादा हो सकता है। इसे प्रायः सांदर्भिक या सरल शब्दों में वस्तुगत लिंग भी कहते हैं।''3 इन सभी परिभाषाओं के अनुसार एक बात निकल कर आती है कि प्राकृतिक लिंग का संबंध वास्तविक जगत से होता है और प्राकृतिक लिंग को 'जेण्डर' ना कह के 'सेक्स' से सम्बोधित किया जाता है। प्राकृतिक लिंग हमेशा चेतन पदार्थ का द्योतक होता है। प्राणवान् संज्ञाएँ या तो पुल्लिंग होती हैं या स्त्रीलिंग। इनके निर्णय में कोई दुविधा नहीं होती है, परन्तु निर्जीव संज्ञाओं के निर्णय में कभी–कभी बड़ी कठिनाई होती है।

व्याकरणिक लिंगः–

संज्ञा (शब्द)

↓

अप्राणिवाचक (जड़)

(मकान, मेज, पुस्तक, आदि)

व्याकरणिक लिंग का अर्थ है, व्याकरणकारों द्वारा निर्णीत लिंग। कान पुल्लिंग है, परन्तु कान की तरह नाक भी शरीर का एक अंग है, लेकिन वह स्त्रीलिंग का द्योतक है। नारी स्त्रीलिंग है, किन्तु दारा पुल्लिंग है, भार्य स्त्रीलिंग और कलत्र नपुंसकलिंग है। इस प्रकार का लिंग–विधान व्याकरणिक लिंग कहा जाता है। डॉ. सूरजभान सिंह के अनुसार– ''लिंग एक व्याकरणिक कोटि है, जिसकी सत्ता केवल व्याकरण में निहित है। इसलिए इसे व्याकरणिक लिंग कहा जाता है। ''भाषाओं में प्राणिवाचक शब्द प्राकृतिक लिंग का अनुसरण करते हैं। यथा–चाचा, छात्र, भाई, लड़का आदि शब्द प्रकृति और व्याकरण दोनों में पुल्लिंग हैं तथा चाची, छात्रा, बहन, लड़की आदि दोनों में स्त्रीलिंग। इन्हीं के शब्दों में 'अप्राणिवाचक या अचेतन' शब्दों के संबंध में अलग–अलग भाषाओं में अलग–अलग व्यवस्था है। इन संज्ञाओं को यादृच्छिक ढंग से स्त्रीलिंग और पुल्लिंग वर्गों में रखा गया हैय जैसे–मेज(स्त्री.), पानी(पु.)। डॉ. कविता रस्तोगी के अनुसार–''भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से लिंग से तात्पर्य व्याकरणिक शब्दगत लिंग से लिया जाता है जिसे फोडर, जेस्पर्सन आदि विद्वानों ने 'संदर्भरहित अर्थहीन भाषिक रूप' कहकर परिभाषित किया है।

ध्वन्यात्मक आधार– शब्दों के अन्तिम ध्वनि पर निर्भर होने वाले शब्द से लिंग का भेद किया जा सकता है, जैसे–हिंदी भाषा के शब्द में अगर इकारान्त ध्वनि आती है तो उसे स्त्रीलिंग और आकारान्त आने पर पुल्लिंग शब्द माना जाता है। फ्रेंच भाषा में अक्षर के अन्तिम ध्वनि पर शब्दों के लिंग का निर्णय किया जाता है। इसी तरह हैमेटिक परिवार की भाषाओं में इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। ''गल्ल भाषा में लिंगों का भेद शब्द के प्रथम ध्वनि से होता है।''

रूपात्मक आधार – रूप के आधार पर लिंग का भेद किया जा सकता है। इसका उदाहरण आर्य परिवार और द्रविड़ परिवार की भाषाओं में विशेष रूप से देखा जाता है, जिसको प्रत्यय आधारित लिंग भेद कहा जाता है, जैसे–

हिंदी–	प्रत्यय	शब्द	लिंग
	–ता	ममता,कुशलता	स्त्रीलिंग
	–त्व	ममत्व,लघुत्व	पुल्लिंग
	–इमा	लालिमा,महिमा	स्त्रीलिंग
	–पन	बचपन,बालपन	पुल्लिंग
	–आवट	बनावट,सजावट	स्त्रीलिंग
संस्कृत			
	–आ	अजा	स्त्रीलिंग
	–अक	बालक,पाठक	पुल्लिंग
	–इका	मूशिका,बालिका	स्त्रीलिंग

अंग्रेजी–	प्रत्यय	शब्द	लिंग
	–मे	Poetess	स्त्रीलिंग
	–शून्य	Poet	पुल्लिंग
	–ine	Heroine	स्त्रीलिंग
	–शून्य	Hero	पुल्लिंग
	–rix	Executrix	स्त्रीलिंग

	–शून्य	Executor	पुल्लिंग
तमिल–			
	–इ	वीटटुक्कारि	स्त्रीलिंग
कन्नड़–			
	–गार्ति	तोटगार्ति	स्त्रीलिंग

ये सभी शब्द रूपात्मक आधार पर भिन्न हैं। रूपात्मक आधार का प्राकृतिक लिंग नहीं होता है। ''हिंदी में बहुवचन रूप, जिसे बद्ध रूपिम के अर्न्तगत रखा जाता है। उसके आधार पर भी लिंग का निर्धारण किया जा सकता है (उपर्युक्त उदाहरणों में सभी प्रत्यय भी बद्ध रूपिम के अर्न्तगत आते हैं), जिन शब्दों का बहुवचन रूप बनाने में 'ऐं' अथवा 'याँ' आवे वे सभी स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे– मेजें, कुर्सियाँ, सड़कें, चिड़ियाँ, परियाँ आदि, जिन शब्दों के बहुवचन रूप में 'ए' अथवा 'षून्य' रहे वे पुल्लिंग होते हैं, जैसे– कपड़े, समाज, मकान, घोड़े, लड़के आदि।''13 (यहाँ ध्यातव्य है कि 'ए' केवल आकारांत पुल्लिंग शब्दों के होते हैं।)

अर्थात्मक आधार– अर्थ के आधार लिंग की बात करें तो किसी भी वाक्य में प्रयुक्त संज्ञा शब्द के अर्थ पर उसके लिंग का निर्धारण किया जा सकता है, जिस शब्द में कर्कष, कठोर, वृहदाकार, भयावह वस्तुओं का बोध होता है, उसे पुल्लिंग और छोटी, मुलायम,कम महत्त्व वाली वस्तुओं को स्त्रीलिंग कहते हैं। इसका उदाहरण ''सैमेटिक भाषाओं में मिलता है जहाँ स्थूल को पुल्लिंग और लघु को स्त्रीलिंग मानते हैं ।''14

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
चूहा	चुहिया
लोटा	लुटिया
टोपा	टोपी

इन उदाहरणों से एक बात सामने आती है कि लिंगों का भेद अर्थ के आधार पर किया जा सकता है, जिसको आकार भेद भी कहा जाता है।

हिंदी सर्वनाम, विशेषण और क्रिया की लिंगगत अन्विति

भारतीय आर्यभाषा में लिंग–सर्वनाम का इतिहास अत्यन्त रोचक है। लिंग–सर्वनाम एक व्याकरणिक कोटि है, जो संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिंदी आदि आर्यभाषाओं की प्रकृति में विद्यमान है। लिंग–सर्वनाम के अनस्तित्व से उक्त भाषाओं की संरचना अधूरी रह जाती है। हिंदी के संज्ञा–शब्दों में लिंगभेद जैसी जटिलता है, वैसी जटिलता सर्वनामों के साथ नहीं पाई जाती। हिंदी के सर्वनामों का लिंग प्रायःक्रिया के लिंग से ज्ञात हो जाता है। सर्वनाम का प्रयोग वाक्य के अन्दर पुनरूक्त से बचने के लिए संज्ञापदों के बदले सर्वनाम का प्रयोग करते हैं। सर्वनाम की अवधारणा सभी नामों के स्थान पर प्रयुक्त होने के कारण इन्हें सर्वनाम कहा जाता है, जिनकी संख्या(हिंदी में) ग्यारह होती है– वह, तुम, मैं, आप, यह, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या और सब। किन्तु हिंदी सर्वनामों में संस्कृत(पु. सः, स्त्री. सा) और अंग्रेजी (he, she) की तरह लिंग का भेद नहीं किया जाता। हिंदी में सर्वनामों का लिंग क्रिया के आधार पर होता है, जैसे– मैं जाता हूँ, मैं जाती हूँ । इन वाक्यों में सर्वनाम की अन्विति क्रिया के साथ हो रही है। किन्तु एक बात यह है कि उत्तम और मध्यम पुरुष सर्वनामों में लिंग का भेद नहीं होता है।

अन्य पुरुष में यह लिंग भेद कुछ भाषाओं में होता है कुछ भाषाओं में नहीं होता, जैसे–

भाषाएँ	लिंग	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
संस्कृत	पु.	सः	तौ	ते
	स्त्री	स	ते	त
	नपुं	तम्	ते	तानि
तमिल	पु.	अवन्	–	टवर
	स्त्री	अवल्	–	टवर
	नपुं	टदु	–	अवै
कन्नड	पु.	टवनु	–	अवरु
	स्त्री	टवलु	–	अवरु
	नपुं	टदु	–	अतु
अंग्रेजी	पु.	He	–	They
	स्त्री	She	–	They
	नपुं	It	–	They
मराठी	पु.	ते	–	ते
	स्त्री	ती		त्या
	नपुं	ते	–	ते
हिंदी	पु	वह	–	वे
	स्त्री	वह	–	वे

उपरोक्त उदाहरण से साफ है कि इन सभी भाषाओं में लिंग–भेद की तीन प्रणालियाँ हैं। प्रथम प्रणाली में एकवचन और बहुवचन दोनों में तीनों लिंग होते हैं। संस्कृत और मराठी ये दोनों भाषाएँ इस प्रणाली के अनुसार चलती रहती हैं। दूसरी प्रणाली के एकवचन में तीनों लिंग हैं किन्तु बहुवचन में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग का एक ही रूप होता है। नपुंसकलिंग का रूप अलग हो जाता है। तमिल और कन्नड इस प्रणाली पर चलती है। तीसरी प्रणाली के एकवचन में तीनों लिंग हैं लेकिन बहुवचन में कहीं भी लिंग–भेद नहीं होता। अंग्रेजी भी इसी प्रणाली पर चलती है। हिंदी के सर्वनामों में एकवचन में या बहुवचन में कभी भी लिंग भेद नहीं होता। इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि हिंदी के

सर्वनाम लिंगविहीन हैं। हिंदी सर्वनाम का रूप क्रिया से स्पष्ट होता है, जैसे–

	एकवचन	बहुवचन
पुल्लिंग–	मैं जाता हूँ।	हम जाते हैं।
स्त्रीलिंग–	मैं जाती हूँ।	हम जाती हैं।

विशेषण में लिंग भेद– विशेषण में लिंग भेद अलग–अलग भाषाओं में अलग प्रकार से देखा जा सकता है। संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी मराठी तमिल आदि भाषाओं में विशेषण में लिंग भेद देखने योग्य है। ''तमिल भाषा के विशेषणों में लिंग–द्योतक की आवश्यक ता नहीं है। तमिल में विशेषण अव्यय होते हैं (भाषा त्रैमासिक, 1979) इसके उदाहरण है–

पु. रामन् नल्ल पैयन्	राम अच्छा लड़का है।
स्त्री. लक्ष्मी नल्ल पेण	लक्ष्मी अच्छी लड़की है।
नपुं. इदु नल्ला पलम	यह अच्छा फल है।

संस्कृत भाषा में विशेषण का लिंग, वचन और विभक्ति ये तीनों विशेष्य पर निर्भर करते हैं, जैसे –

1. रामः सुन्दर बालकः – राम एक सुन्दर लड़का हैं।
2. सुन्दरं रामं पश्य – सुन्दर राम को देखो।
3. रामः बुद्धिमान् – राम बुद्धिमान है।
4. सीता बुद्धिमती – सीता बुद्धिमान है।

उपरोक्त वाक्यों में प्रथम वाक्य में 'रामः' विशेष्य है जो पुल्लिंग एकवचन में है। अतः 'सुन्दर' और 'बालकः' दोनों शब्द पुल्लिंग एकवचन में ही प्रयुक्त हुए हैं। 'रामः' शब्द प्रथमा विभक्ति में है, अतः दोनों विशेषण भी प्रथमा विभिक्ति में ही प्रयुक्त हुए हैं। दूसरे वाक्य में 'राम' विशेष्य है। अतः उसका विशेषण भी पुल्लिंग एकवचन में ही है। इस वाक्य में 'राम' शब्द द्वितीया विभक्ति में आया है, इसलिए उसका विशेषण भी 'सुन्दरम्' द्वितीया विभक्ति में प्रयुक्त है। तीसरे वाक्य में 'रामः' शब्द विशेष्य पुल्लिंग है इसलिए 'बुद्धिमान' विशेषण भी पुल्लिंग में है। चौथे वाक्य में 'सीता' विशेष्य है। यह शब्द स्त्रीलिंग है इसलिए विशेषण 'बुद्धिमती' स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुआ है।

अंग्रेजी भाषा में भी विशेषण में लिंग–भेद नहीं होता, कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं।

1. Ram is a good boy.
2. Vinay is an intelligent boy.
3. He is a tall man.

उपर्युक्त वाक्यों से यह बात स्पष्ट है कि अंग्रेजी भाषा के विशेषणों में लिंगभेद नहीं होता। हिंदी तथा मराठी के विशेषणों में प्रायः लिंग भेद नहीं होता। हिंदी तथा मराठी भाषाओं में आकारान्त विशेषण रूपान्तरित होते हैं किन्तु अकारान्त विशेषण रूपांतरित नहीं है जैसे– सुन्दर, लाल, सफेद आदि। किन्तु कुछ आकारान्त विशेषण भी अपवाद के रूप में रूपान्तरित नहीं होते। जैसे, बढ़िया, उमदा, आदि हिंदी में रूपान्तररहित हैं। कुछ विशेषण रूप एक भाषा में रूपान्तरित होते हैं, पर दूसरी भाषा में नहीं। हिंदी में 'मर्दाना' यथा मर्दाना, मर्दानी, मर्दाने' रूपान्तरित होते हैं पर मराठी में 'मर्दानी' रूपान्तरित नहीं है। इसके विपरीत उमदा, उमदे आदि हैं। हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं में आकारान्त विशेषण शब्दविशेष्य के लिंग, वचन, कारक के अनुसार परिवर्तनशील हैं, किन्तु इसमें एक बात यह सामने आती है कि हिंदी में सब मिलाकर विशेषण के तीन रूप मिलते हैं, 'आकारान्त', 'ईकारान्त' तथा 'एकारान्त' (पीला, पीली, पीले) किन्तु मराठी भाषा में कुल मिलाकर चार रूप मिलते हैं, 'आकारान्त', 'ईकारान्त', 'एकारान्त' (एकवचन, बहुवचन) और 'याकारान्त'(काळा, काळी, काळे, काळ्या)। मराठी में विशेषण रूप एक से अधिक लिंग, वचन तथा कारक में प्रयुक्त होते हैं। विशेषण रूपों को इस प्रकार से देखा जा सकता है–

ऋजुकारक

लिंग	एकवचन	बहुवचन
पु.	आ (मूल)	ए
स्त्री.	ई	या
नपु.	ए	ई

मराठी उदाहरण –

1. (काला)	एकवचन	बहुवचन
	पु. काळा	पु. काळे
	स्त्री. काळी	स्त्री. काळ्या
	नपु. काळे	नपु. काळी

मराठी, हिंदी तथा मलयालम के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं– आकारान्त को छोड़ अन्य विशेषणों पर मराठी तथा हिंदी में लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु मलयालम में पड़ता है। जैसे –

हिंदी	मराठी	मलयालम
पु. सुन्दर पुरूष	सुन्दर पुरूष	सुन्दरनाय पुरूषन्
स्त्री. सुन्दर स्त्री	सुन्दर स्त्री	सुन्दररियाय स्त्री
नपु. ––	सुन्दर पुस्तक	सुन्दरमाय पुस्तक

क्रिया के लिंग–भेद– प्रत्येक भाषा में क्रिया की स्थिति भिन्न–भिन्न प्रकार की पायी जाती है। तात्पर्य यह है कि अलग–अलग भाषाओं में क्रिया की अन्विति को अलग–अलग प्रकार से देखा जा सकता है । वैसे तो क्रिया का कोई लिंग नहीं होता, किन्तु वाक्य में क्रिया अन्विति के कारण कर्ता या कर्म के अनुसार बदलती है। इसलिए क्रिया पर लिंग का प्रभाव पड़ता है। किन्तु संस्कृत भाषा में क्रिया पर कर्ता या कर्म के लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता जैसे –

1. रामः फलं भक्षयति – राम फल खाता है।
2. सीता फलं भक्षयति – सीता फल खाती है।

3. मृगानाम् वृन्दम् तृणं भक्षयति – हिरणों का झुण्ड घास चरता है।

इन तीनों वाक्यों में क्रिया का रूप 'भक्षयति' एक ही है अर्थात् तीनों लिंगों में क्रिया रूप समान है। इन वाक्यों में राम–पुल्लिंग, सीता–स्त्रीलिंग, मृगानाम वृन्दं– नपुंसकलिंग में हैं, अर्थात् कर्ता का लिंग अलग–अलग होते हुए भी क्रिया पर उसका कोई प्रभाव नहीं है। अंग्रेजी भाषा में भी क्रिया पर कर्ता या कर्म के लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जैसे –

1. He goes –वह जाता है।
2. She goes –वह जाती है।
3. The train goes – रेल जाती (जाता) है।

इन तीनों वाक्यों में कर्ता भिन्न–भिन्न लिंगों में प्रयुक्त है किन्तु तीनों वाक्यों में क्रिया 'हवमे' बदलती नहीं है। हिंदी भाषा में कर्ता तथा कर्म के अनुसार क्रिया का लिंग बदलता है। इसे यों कह सकते हैं कि कर्ता तथा कर्म का जो लिंग है वही क्रिया का भी। हिंदी में वर्तमान, भूत, भविष्य तीनों कालों में क्रिया पर लिंग का प्रभाव पड़ता है। जैसे –

वर्तमानकाल–	पु. जाता है।	स्त्री. जाती है।
भूतकाल –	पु. गया।	स्त्री. गयी।
भविष्यकाल–	पु. जाऊँगा।	स्त्री. जाऊँगी।

हिंदी में विध्यर्थ तथा संभाव्यर्थ वाक्यों में क्रिया का लिंग पहचाना नहीं जाता। दोनों लिंगो में इन क्रियाओं का प्रयोग होता है। जैसे– तुम काम करो।

आप आइए।
कृपया दस रूपये दीजिए।
तो मैं चलूँ।
आप अवश्य काम करें आदि।

कई बार जब संज्ञा सर्वनाम या विशेषण के लिंग को उनके अर्थ और रूपों से पहचानने में कोई सहायता नहीं मिलती, तब क्रिया रूप सहायक हो सकते हैं। किन्तु क्रिया रूप भी दो प्रकार से अर्थात् कर्ता और कर्म के अनुसार बदलते हैं, जैसे –

कर्ता के अनुसार–लड़का रोज सबेरे दूध पीता है।
लड़की रोज सबेरे दूध पीती है।

कर्म के अनुसार– लड़के ने ग्रन्थ पढ़ा।
लड़की ने पोथी पढ़ी।

इसके आलावा क्रिया का एक और रूप मिलता है जिस पर कर्ता या कर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अर्थात् क्रिया रूप सदा अन्य पुरुष पुल्लिंग एकवचन में प्रयुक्त होता है, जैसे–

मोहन ने सविता को बुलाया
सविता ने मोहन को बुलाया

उपर्युक्त उदाहरण में कर्ता मोहन एवं सविता के साथ परसर्ग जुड़ने के कारण उसकी अन्विति क्रिया के साथ नहीं हो रही है। ऐसे ही कर्म के साथ भी परसर्ग 'को' जुड़ा है इसलिए कर्म की भी अन्विति क्रिया के साथ नहीं हो रही है। ऐसे में क्रिया तटस्थ हो जाती है। मराठी भाषा में भी क्रिया का कोई लिंग नहीं होता। वाक्य में प्रयुक्त कर्ता और कर्म का क्रिया पर प्रभाव पड़ता है, अर्थात् कर्ता तथा कर्म के लिंग के अनुरूप क्रिया हो जाती है। हिंदी में तीनों कालों में क्रिया पर लिंग का प्रभाव पड़ता है किन्तु मराठी में भविष्यत् काल में क्रिया पर लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् भविष्यत् काल में कर्ता या कर्म के अनुसार क्रिया नहीं बदलती।

मराठी में कर्ता के अनुसार क्रिया के लिंग पर प्रभाव–

पु. मुलगा सकाळी दूध पितो	लड़का सबेरे दूध पीता है।
स्त्री. मुलगी सकाळी दूध पिते	लड़की सबेरे दूध पीती है।
नपु. मूल सकाळी दूध पिते	बच्चा सवेरे दूध पीता है।

यहाँ स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग के क्रियारूप एक ही हैं 'पिते'।

मराठी में कर्म के अनुसार क्रिया के लिंग पर प्रभाव–

पु. मुलाने ग्रंथ वाचला।	लड़के ने ग्रन्थ पढ़ा।
स्त्री. मुलीने पोथी वाचली।	लड़की ने पोथी पढ़ी।
नपु. मुलाने पुस्तक वाचले।	बच्चे ने किताब पढ़ी।

मराठी में भविष्यत् काल के क्रियारूपों में लिंग पर प्रभाव–

पु. राम सकाळी येईल।	राम सबेरे आयेगा।
स्त्री. सीता सकाळी येईल।	सीता सबेरे आयेगी।
नपु. मूल सकाळी येईल।	बच्चा सबेरे आयेगा।

मराठी में क्रिया का एक और रूप मिलता है। इसमें क्रिया रूप सदा अन्य पुरुष नपुंसकलिंग एकवचन में रहता है, जैसे–

रामाने सीतेला बोलाविले/बोलावले
रामने सीता को बुलाया।
सीताने रामाला बोलाविले/बोलावले
सीताने राम को बुलाया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि हिंदी एवं मराठी भाषा की प्रकृति भिन्न होने के कारण क्रिया प्रयोग भी भिन्न है।

उपसंहार

हिंदी की लिंग–व्यवस्था का व्यापक और पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत कर पाना सर्वथा कठिन है।प्राचीनकाल से वैयाकरणों ने इसे पूर्ण नियम द्वारा अनुशासित करने की चेष्टा की है। फिर भी हिंदी शब्दों की लिंग–व्यवस्था का पूर्ण रूप से समाधान नहीं हो सका। इस कार्य में सर्वप्रथम विभिन्न पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट लिंग की परिभाषा और स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत लिंग संबंधी विभिन्न दृष्टिकोण को समझने काप्रयास किया गया है। साधारणतः लिंग का विधान शब्द –भेद द्वारा निःसृत होता है, जिसमें संज्ञा शब्द का विशिष्ट स्थान है। इसलिए संज्ञा शब्दों में प्रयुक्त प्रभावी घटक के रूप में प्राकृतिक, व्याकरणिक, ध्वन्यात्मक, रूपात्मक और अर्थात्मक आधार का

वर्णन किया गया है। इन आधारों के केन्द्र से एक महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आया है, वह हो सकता कि सीधे भाषा विज्ञान की संरचना व्याख्या को न पुष्ट कर रहा हो, लेकिन भाषा पर पड़ने वाला संबंधित सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव पड़ता है कि भाषा के अर्थ पर आधिक जोर दिया जाना चहिए क्योंकि समाज में जितनी भी बड़ी वस्तु है उन को पुल्लिंग और छोटी वस्तु को स्त्रीलिंग माना जाता है, जैसे– किश्ती(स्त्री.), जहाज(पु.) इसी तरह से अर्थ का अधिक स्थान बड़ा होने के कारण उसे अधिक प्रधानता मिलनी चाहिए। हिंदी भाषा के शब्दों के लिंग की पहचान के लिए सर्वनाम, विशेषण, क्रिया की अन्विति के आधार पर किया गया है, जिसमें वाक्यों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के लिंग का निर्धारण अच्छी तरह से हो सके। अतः लिंगों की अन्विति किस प्रकार होती है इसका विवेचनभी लिंग व्यवस्था के अंतर्गत किया गया है।

संदर्भ–सूची

1. सिंह, सूरजभान (2003) *अंग्रेजी–हिंदी अनुवाद व्याकरण,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
2. गुरू, कामता प्रसाद (1920) *हिंदी व्याकरण,* काशी नागरी प्रचारणी सभा, काशी
3. वाजपेयी, किशोरीदास (पंचम) *हिंदी शब्दानुशासन,* नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी
4. दीमशीत्स, जे.एम (1960) *हिंदी व्याकरण की रूपरेखा,* दिल्ली
5. देशमुख, अंबादास.1990. *हिंदी ओर मराठी की व्याकरणिक कोटियाँ,* कानपुर अतुल प्रकाशन।
6. हेगडे,वी.डी.2001. *हिंदी की लिंग प्रक्रिया* (प्रथम संस्करण), मैसूर मेघ प्रकाशन।
7. वर्मा, रामचंद्र.2006. *अच्छी हिंदी,* नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन।
8. रस्तोगी, कविता.2005. *'हिंदी–अंग्रेजी की लिंग व्यवस्था का व्यतिरेकी अध्ययन',* गवेषणा, पृ.1.5, आगरा केन्द्रीय हिंदी संस्थान।
9. परमेश्वरम.एच.1983. *'हिंदी की लिंग व्यवस्था',* व्याकरण सिद्धांत और व्यवहार (प्रथम संस्करण). आगरा : केन्द्रीय हिंदी संस्थान।

✦ ✦ ✦

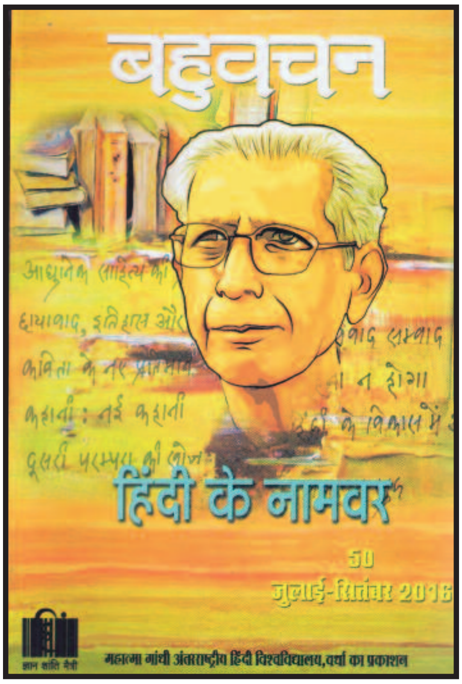

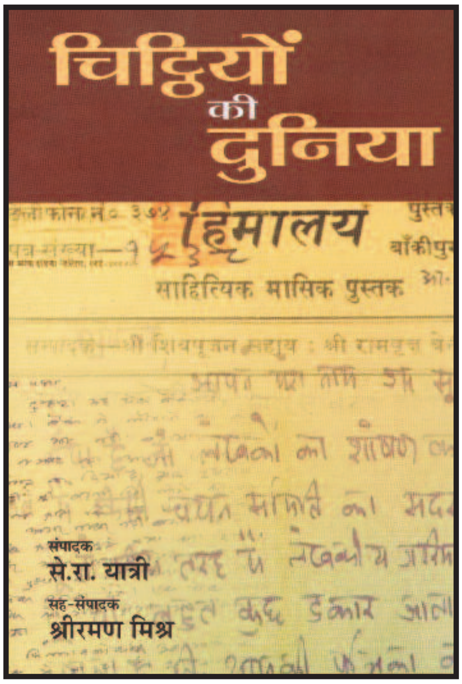

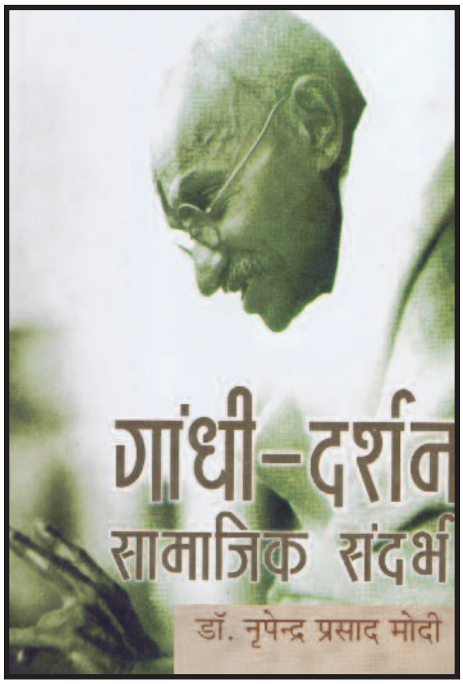

संस्कृत साहित्य में दूतकाव्य की परंपरा

सुधा त्रिपाठी

संस्कृत साहित्य में दूतकाव्यों की एक महीयसी परम्परा रही है। सामान्यतः नायक–नायिकाओं के परस्पर विप्रलम्भ जनित क्लेश को कम करने के लिए तथा एक–दूसरे के प्रति अपने मनोभावों को प्रेषित करने के लिए किसी न किसी दूत का अवलम्बन लिया जाता रहा है। इस दृष्टि से श्रीमद्भागवत् का भ्रमरगीतोपाख्यान अत्यंत ही प्रसिद्ध रहा है एवं उत्तरवर्ती कवियों के लिए सदैव उपजीव्य रहा है। मथुरा से भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा बृजभूमि में भेजे गये उद्धव को गोपियों ने भ्रमर के बहाने अपने मन की बात कहते हुए श्रीकृष्ण को उपालम्भ भेजा था और यही उपालम्भ गोपीगीत के रूप में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के सैंतालीसवें अध्याय में वर्णित है। भ्रमर के माध्यम से गोपियों ने भगवान श्रीकृष्ण को उपालम्भ भेजा था कि रे मधुप! तू कपटी का सखा है, इसलिए तू भी कपटी है। तू हमारे पैरों को मत छू। तू स्वयं भी तो किसी कुसुम से प्रेम नहीं करता, यहाँ से वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू। उनका वह कुड्कुम रूप कृपा–प्रसाद तेरे द्वारा यहाँ भेजने की क्या आवश्यकता है?

मधुप कितवबन्धो मा स्पृषाड्घ्रिंसपत्न्याः
कुचविलुलितमाला कुड्कुमश्रुभिर्नः।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक्।।1

उपालम्भ के इसी क्रम में गोपियों ने भ्रमर के माध्यम से दूत कर्म का वर्णन करते हुए कहा है कि अरे मधुकर! देख, तू मेरे पैर पर सिर मत टेक। मैं जानती हूँ कि तू अनुनय–विनय करने में, क्षमा–याचना करने में बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्ण से यही सीख कर आया है कि रूठे हुए को मनाने के लिए दूत (संदेश वाहक) को कितनी चाटुकारिता करनी चाहिए। पर तेरी दाल यहाँ नहीं गलने वाली। हमने श्री कृष्ण के लिए ही अपने पति, पुत्र और दूसरे लोगों को छोड़ दिया परंतु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे तो ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने। क्या तू अब भी कहता है कि उन पर विश्वास करना चाहिए?

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै
रनुनय विदुषस्तेभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृत चेताः किंनु सन्धेयमस्मिन्।।2

गेपियाँ श्रीकृष्ण के चिंतन में अत्यंत अधीर हो चुकी थीं तभी तो उन्होंने भ्रमर के माध्यम से यह संदेश भेजा कि अब वे श्रीकृष्ण से क्या, किसी भी काली वस्तु के साथ मित्रता से कोई प्रयोजन नहीं रखेंगी। परंतु यदि तू कहे कि 'जब ऐसा है तब तुम लोग उनकी चर्चा क्यों करती हो? तो भ्रमर! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकतीं। गोपियाँ श्रीकृष्ण के दूत भौंरे से अपनी वेदना का वर्णन करती हुई कहती हैं कि जिस प्रकार कृष्णसार मृग की पत्नी भोली–भाली हरिनियाँ व्याध के सुमधुर गान का विश्वास कर लेती हैं और उसके जाल में फँसकर मारी जाती है, वैसे ही हम भोली–भाली गोपियाँ भी उस छलिया कृष्ण की कपट भरी मीठी–मीठी बातों में आकर उन्हें सत्य के समान मानने के कारण कष्ट की अनुभूति कर रही हैं। विरहिणी गोपियों ने भ्रमर को श्रीकृष्ण का दूत एवं अभिन्न सखा मानकर ही श्रीकृष्ण संबंधी प्रश्नों की मानो बौछार ही कर दी यथा– तुम्हारी इच्छा क्या है? क्या तुम हमें वहाँ ले चलना चाहते हो? परंतु तुम हमें वहाँ लेजाकर करोगे क्या? उनके साथ तो उनकी प्रिय पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा आदि। भ्रमर के माध्यम से गोपियाँ अपनी मनोदशा तथा विरहव्यथा को श्रीकृष्ण तक शीघ्रातिशीघ्र भेजना चाहती हैं, वहीं दूसरी ओर तत्क्षण ही गोपियाँ पुनः भ्रमर से पूछना आरम्भ कर देती हैं कि हमारे प्रियतम के प्यारे दूत मधुकर! हमें यह बताओ कि आर्यपुत्र भगवान श्रीकृष्ण गुरूकुल से लौटकर मधुपुरी में अब सुख से तो हैं न? क्या वेअब कभी नंदबाबा, यशोदारानी, यहाँ के घर, सगे–संबंधी और ग्वालबालों की भी याद करते हैं? और क्या हम दासियो ंकी भी कोई बात कभी चलाते हैं? प्यारे भ्रमर! हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अगर के समान दिव्य सुगन्ध से युक्त भुजा हमारे सिरों पर रखेंगे? क्या हमारे

जीवन में कभी ऐसा शुभ अवसर भी आएगा?

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोधुनास्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बंधूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्किःकरीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूध्र्न्यधास्यत कदानु।।3

गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक थीं। भगवान श्रीकृष्ण के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने को उद्यत गोपियाँ उनके दर्शन के लिए लालायित हो रही थीं। ऐसे में जब उन्होंने श्रीकृष्ण के सेवक उद्धवजी को देखा तो वे उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गईं। कृष्णमय गोपियाँ बचपन से लेकर किशोरवस्था तक की सभी लीलाएँ याद कर उसका गान करने लगीं। गोपियाँ स्त्री सुलभ लज्जा को भी भूलकर फूट–फूट कर रोने लगीं और श्रीकृष्ण को उलाहना देने लगीं।

गोपियाँ श्रीकृष्ण को उलाहना दे ही रही थीं कि तभी निकुन्ज में भ्रमण करते हुए एक भ्रमर को देखते ही गोपियों ने भ्रमर के माध्यम से उपालम्भ दिया है और यही गोपीगीत का भ्रमरोपालम्भ अनेक परवर्ती काव्यों का जैसे प्राणतत्व बन गया और संस्कृत तथा हिंदी भाषा में अनेक दूतकाव्यों की रचना की गई, जिसमें हंसदूतम्ः 'हनुमद्दूतम्ः 'भ्रमरदूतम्' 'भृंगदूतम्' आदि दूतकाव्य की धारा को समृद्ध करते चले आ रहे हैं। दूतकाव्यों को ही संदेश काव्यों के नाम से अभिहित किया गया है– जिसमें प्रेमी द्वारा अपनी प्रेमिका को संदेश भेजा जाता है तथा उसमें संदेश वाहक के रूप में दौत्य कर्म के लिए किसी सजीव या निर्जीव किसी भी साधन को कवियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर सृजित किया है।

डॉ. हरिनारायण दीक्षित द्वारा रचित 'श्री हनुमद्दूतम्' नामक खण्डकाव्य 112 श्लोकों में पूर्ण हुआ है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि संदेश– काव्यकुसुममाला का यह अत्यन्त ही मनोरम कुसुम है जिसमें भाव की सुरभि है और शब्द शिल्प का सुंदर समन्वय है। इस काव्य का कथानक यह है कि अशोकवाटिका में स्थित जानकी जी ने हनुमानजी के माध्यम से अपने आराध्य श्रीराम को संदेश भेजा है। इस काव्य में जहां विचारों में परिपक्वता है वहीं दाम्पत्य प्रेम की गम्भीरता आपतकाल की धीरता एवं अनेकानेक मानवीय पक्षों का मंजुल वर्णन डॉ. दीक्षित द्वारा किया गया है–

शङ्कालेशोपि न मम मनस्यस्ति ते शक्तिमत्त्वे
कार्याणीमानि खलु भवतश्श्रेष्ठ शौर्यं वदन्ति।
पापी लोभी व्यथितनिज बन्धुश्च जाया समूहे
व्यासक्तोयं कटुकवचनस्ते तृणं रावणोस्ति।।4

अर्थात् मेरे मन में आपके शक्तिशाली होने के विषय में जरा सी भी शंका नहीं है क्योंकि ये कार्य आपके सर्वोत्तम शौर्य को निश्चत ही बता रहे हैं। इसलिए पाप करने वाला, लालची, अपने भाइयों को व्यथित करने वाला, बहुत सी स्त्रियों में आसक्ति रखने वाला और कड़वे वचन बोलने वाला यह रावण तो आपके लिए तिनके के समान है।

कृत्वा मायामृगमनु भवन्तं महा धूर्तराजः
साहाय्यार्थं मम च वचसा लक्ष्मणेपि प्रयाते।
युष्मद्भीतो विहितमुनिवेषो वनान्ताद्रहोयं
भिक्षां याचन्कुटिलविधिना वंचायित्वाहरन्माम्।।5

अर्थात् –

आपसे डरा हुआ यह नंबरी जालसाज (रावण) आपको बनावटी हिरन के पीछे लगाकर और मेरे कहने से (आपकी) सहायता के लिए लक्ष्मण के भी चले जाने पर महात्मा का वेषबनाकर छलपूर्ण तरीके से भिक्षा माँगता हुआ मुझे ठगकर निर्जन वनप्रांत से अपहृत कर लाया है।

आचार्य गायत्री प्रसाद पाण्डेय द्वारा रचित लघुकाव्य भृङ्गदूतम् उसी काव्य परम्परा में लिखा गया है जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा अपनी प्राणेश्वरी राधा को संदेश भेजा गया है। दूत के रूप में भ्रमर का चयन करते हुए लेखक ने अपने प्रथम श्लोक में ही अर्थान्तरन्यास के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि बड़े लोग छोटे माध्यमों से भी बड़े कार्य ले लिया करते हैं।

यथा –

संसारेस्मिन् विरल पुरुषा संति केचित्प्रवीणाः,
संदेशं ये हृदय निहितं साधु सम्व्याहरिन्त।
जानन्नेवं हरिरपि तथा भृङ्गदूतं न्ययुङ्क्त
नूनं श्रेष्ठा : लघुभिरधिकं कार्यमापादयन्ति।।6

अर्थात् इस संसार में ऐसे प्राणी विरले ही होते हैं जो किसी के संदेश को उसकी भावना के अनुरूप ठीक–ठीक पहुँचा देते हों। भगवान श्रीकृष्ण ने यह जानते हुए भी (अपनी प्रेयसी राधा के पास अपने हृदय निहित संदेश को भेजने के लिए) भौंरे को दूतों के रूप में नियुक्त किया जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बड़े लोग छोटे जीवों से भी बड़ा काम लेना जानते हैं। इस काव्य की भाषा अत्यन्त मधुर तथा प्रांज्वल है।

द्रष्टव्य श्लोक –

यद्यप्येशा ललित ललिता लास्यलीलानभिज्ञा
हस्तैर्युग्मैः नलिनमभितः स्वाननं गोपयन्ती।
कर्णे जापं ननु रतिकरं कृष्ण कृष्णेतिभूम्मा
श्रावं–श्रावं प्रमुदितमना प्रेक्षणीया त्वयापि।।7

अर्थात् –

यद्यपिआजकल मेरी प्रेयसी राधा लास्यलीला (मेरे वियोग में) भूल चुकी होगी, वह अपने दोनों हाथों से अपने मुख कमल को ढँके होगी (फिर भी) तुम उसके कानों के पास जाकर धीरे–धीरे मेरा नाम (कृष्ण–कृष्ण) गुनगुनाना जिसे सुन–सुनकर उसका मन प्रसन्न होता हुआ तुम निश्चित ही देखोगे।

शब्द लालित्य का एक अत्यन्त मनोहर उदाहरण द्रष्टव्य है–

घ्रायं घ्रायं सुखनभुवं चारूमान्दारगन्धम्
धायं धायं कुसुमसुरभि स्निग्धदुग्धंसुरम्या।
श्रावं श्रावं श्रवणसुखदं मज्जुमाड़्गल्य गीतम्
श्रामं श्रामं भ्रमर भवता प्रेक्षणीयं वनंतत्।।8

अर्थात् हे भ्रमर! उस भाण्डीर वन मेंदेव लोक से लाए गए पारिजात के गंध का घ्राण करते हुए दिग–दिगन्त को सुरभित करने वाले कामधेनु के दूध को पीते हुए कानों को रूचिकर लगने वाले मंगल गान को सुनते हुए धीरे–धीरे विश्राम करते हुए वन प्रदेश को देखना। इसी काव्य में कवि ने भाषा विज्ञान के मुख–सुख के लिए 'भाण्डेनीरं' का ही 'भाण्डीर' शब्द का उल्लेख किया है।

भाण्डेनीरं यदिह विधिना स्वर्गलोकादुपान्तम्
वैवाहिक्ये सुरधुनिकृतं सत्य संकल्प सिद्धौ।
वामा राधा परम रसिका गाम्यलोकानुकूलं
भाण्डीराख्यं मुखसुखविधौ नाम चास्यन्यगादीत्।।9

अर्थात् – ब्रह्माजी द्वारा लाए गए कमण्डलु के दिव्य जल के कारण 'भाण्डेनीरं' का नामकरण 'भाण्डीरं' श्रीराधा ने किया था। कैसी रम्य कल्पना है। रूचिर वर्ण विन्यास वाली डॉ. पाण्डेय की रचना का एक ललित पद विन्यास अवलोकनीय है–

पायं पायं परमसुखदामाधूरीं माधुरीं ते।
ध्यायं ध्यायं निधुवन सुखं मन्मथासक्तचेतरः।।
स्मारं स्मारं रति सहचरीं स्फीतसर्वान्तरात्मा।
गायं गायं तव गुण गणान् जीवनं यापयेहम्।।10

अर्थात् हे राधे! तुम्हारी अधर सुधाका मनही मन पान करता हुआ, तुम्हारे साथ बिताए एकान्त क्षण का ध्यान करता हुआ, रति सहचरी के रूप में तुम्हारा स्मरण बार–बार करता हुआ, तुम्हारे गुणों का गान करता हुआ मै जीवन बिता रहा हूँ।

उपर्युक्त दूतकाव्यों की निर्झरिणी का स्रोत महाकवि कालिदास रचित खण्डकाव्य 'मेघदूत' रहा है। इस दूतकाव्य में कहाकवि ने काव्यशास्त्र की एक अभिनव उपस्थापना की है। काव्य का नायक कोई ख्यातनामा राजपुरूष नहीं, अपितु एक यक्ष है। यक्ष को धनद का निर्वासन आदेश हुआ था और वह एकाकी अपनी प्रियतमा से वियुक्त हो रामगिरि की उपत्यका में आ जाता है वहीं उमड़ते मेघ को देख उसे ही अपना संदेश वाहक बनाकर अपनी प्रियतमा को संदेश भेजता है। काम से विकल यक्ष को चेतन–अचेतन का विवेक नहीं रहा जाता है। इसलिए कवि को कहना पड़ा ''कामार्ताः हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु''

कालिदास ने यक्ष के माध्यम से अलकापुरी का सुंदर वर्णन किया है। यक्ष ने मेघ को उसके गन्तव्य मार्ग का विस्तार से वर्णनकिया है। यक्ष ने मेघ के सहयात्री के रूप में राजहंसों को सहायक बताते हुए उसके एकाकी गमन के संकोच को दूर कर दिया। आम्रकूट पर्वत तथा विन्ध्याचल के चरणों में प्रवहित होती निर्मल सलिला 'नर्मदा' का भी विस्तार से वर्णन किया है। इसी यात्रा के क्रम में 'चर्मण्वती' नदी तथा 'दशार्ण' का भी महाकवि ने वर्णन किया है। हिमालय की उपत्यकाओं में भगवान शंकर के चरणन्यास की परिक्रमा करने का भी यक्ष ने मेघ को निर्देश दिया है। पूर्व व उत्तर दो भागों में बँटे हुए मेघदूत खण्डकाव्य में उत्तर मेघ में कवि ने अलका की नायिकाओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है, जिनके हाथ में लीला कमल, केशपाश में कुन्द की कलियाँ, आनन पर लोध पुष्प का पराग, जूड़े में कुर्वक, कानों में शिरीष और सीमन्त में कदम्ब का पुष्प लगा रहता है–

हस्ते लीलाकमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारू कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।11

जिस अलकापुरी में सभी ऋतुओं में पुष्प विकसित रहते हैं तथा जिन पर भ्रमरों का गुंजन होता रहता है। सरोवरों में कमल के पास ही हंसों की पँक्तियाँ भी रहती हैं तथा अपने सुंदर सुंदर पंखों से शोभित मयूर नृत्य करते रहते हैं–

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्ग
हैमैश्छन्ना विकचमकलैः स्निधवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा।।12

महाकवि कालिदास ने मेघदूत में जहाँ प्रकृति के अत्यंत उन्मादक पक्ष का वर्णन किया है, वहीं वियोगी यक्ष एवं विरहिणी यक्षिणी के मन में उठने वाले मनोभावों का बड़ा मनोरम वर्णन किया है। विप्रलम्भ श्रृंगार में व्यथित यक्षिणी

के दिन किस प्रकार बीत रहे होंगे और वह तुहिन मथिता पद्मिनी की भांति निरंतर रोने से शून्य नयन वाली यक्षिणी के ओष्ठ की कान्ति धूसर हो गई होगी और वह पिंजरे में बैठी मैना से अपने प्रियतम की याद दिलाकर पूछती होगी कि तुझे मेरे स्वामी की याद आती है या नहीं क्योंकि उन्हें तुम भी मेरे ही समान प्रिय थी।

नूनं तस्याः प्रबलरूदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निः श्वासानामशिशिरतयाभिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।।13

महाकवि ने अपने काव्य का अवसान अपने संदेश को सुनाकर किया है। संदेश का प्रथम वाक्य ही अपनी यक्षिणी के लिए 'अविधवा' शब्द के प्रयोग से आरम्भ होता है जिससे यक्षिणी को यह संकेत हो जाए कि उसका पति न केवल जीवित है बल्कि उसने ही अपने किसी प्रिय को मेरे पास संदेशवाहक के रूप में भेजा है–

भतुर्मित्रं प्रियमविधवे बिद्धि मामम्बुवाहं
मत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरवलोवणि मोक्षोत्सुकानि।।14

यक्ष द्वारा दिये गये संदेश में अपनी प्रेयसी की सुकुमारता, उसके नयनों की चंचलता आदि के लिए जो उपमान ढूँढ़े हैं, उनमें किसी में भी उसकी प्रियतमा का सादृश्य नहीं है, अपितु वह उनसे भी अधिक सौंदर्यशालिनीहै। पियड्.गुलताओं में तेरे शरीर की, भयभीत हुई हरिणियों की चितवन में तेरे मुख की कान्ति की, मयूरों के पँखों के समूहों में तेरे केशों की और हल्की–हल्की नदियों की तरड्.गों में तेरे भृड्.गों की कल्पना किया करता हूँ। खेद है कि हे कोप करने वाली! किसी भी एक वस्तु में तेरी समानता नहीं है–

श्यामास्वङ्.गंचकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रछायां शशिनिशिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुष नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।15

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रृंगार रस के प्रसिद्ध कवि कालिदास की कृति मेघदूत श्रृंगार रस प्रधान है जिसमें प्रेम तथा रति का चित्रण है। पूर्व मेध में वर्णित रतिभाव भौतिक वासना से यद्यपि ऊपर नहीं उठ सका है, फिर भी उत्तरमेघ में आध्यात्मिक प्रेम के प्रचुर संदर्भ देखने को मिलते हैं। आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व रचित कालिदास की कृति में जहाँ काम एवं वासना के मज्ज्जुल चित्र मिलते हैं, वहीं 21 वीं सदी के प्रारम्भ में रचित महाकवि तुलसीपीठाधीश्वर स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा राचित भृङ्गदूतम् नामक काव्य में एक अभिनव कल्पना लोक का सृजन किया गया है जिसमें श्रीराम का उदात्त व्यक्तित्व एक विशुद्ध प्रणयी के रूप में उभरकर सामने आता है। इस काव्य में श्रीराम ने अपने मनोमयभृङ्ग को ही दूत बनाकर सीता को संदेश भेजा है। इस काव्य की विशेषता यह है कि भगवान राम का मर्यादास्वरूप कहीं भी न तो खंडित हुआ है और न ही उसमें कहीं भी लौकिक विषय–वासना की गंध है फिर भी यह काव्य नवीनतम होते हुए भी अत्यंत प्राज्ज्वल भाषा में गुम्फित है और पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध दोनों मिलाकर 500 श्लोकों में पूर्ण हुआ है। ''भृड्.ग काव्य में भारतीयता एवं भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्शों के प्रतीक नायक और नायिका के रूप में श्रीराम और सीता के अलौकिक प्रेम का चित्रण हुआ है। इस काव्य में हमारे उच्चतम संस्कारों की समष्टि है तथा प्राचीन आदर्शों के प्रतिआदरभाव है, मर्यादाओं के प्रति सम्मान है तथा अन्याय के विरूद्ध संघर्ष की प्रतिश्रुति है। सीता के विरह में अपने मन को ही मधुप बनाकर सीता को संदेश भेजते हैं। एक मर्यादा पुरूषोतम के द्वारा अपनी धर्मपरायण सरलताहृदय धर्मपत्नी को जो संदेश दिया है, उसमें भारतीय जीवन के मूल्यों, दाम्पत्य के शाश्वत संदर्भों को मकाकवि रामभद्राचार्यने पगे–पगे परिलक्षित कराया है। एक सन्यासी द्वारा ही ऐसे प्रेरणास्पद जीवन मूल्यों को उजागर किया जा सकता है जो जीवन मूल्य हमारे सभ्य समाज के लिए एक मुकुर का काम करते हैं। वन गमन के समय सीता सम्पूर्ण राजकीय वैभव को छोड़कर अपने बनवासी निर्वासित पति के साथ चल पड़ती हैं तो उसके संकट ग्रस्त होने पर आदर्श पति राम के मन में जिस करूणा और व्याकुलता का भाव उठता है उसे अपनी प्रज्ञा दृष्टि के द्वारा महाकवि रामभद्राचार्य के अतिरिक्त कौन देख सकता है? इस काव्य में प्रेम की परिणति भारतीय संस्कृति के द्वारा मनुमोदित दाम्पत्य की सफल परिणति में ही है जिसमें कहीं पर भी काम की उद्दामता नहीं है बल्कि राम का प्रेम है। काव्य में गुम्फित सूक्तियाँ लगभग 86 से अधिक हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित एवं सूक्तियों से सजी इस कृति के कतिपय श्लोक द्रष्टव्य हैं–

तस्मै कर्णे जपप्रकृतये प्रेमविद्याचणाय
स्निग्धं स्तम्बेरमगुणजुषे जीवितार्थी रमायाः।
स्रग्वी स्वस्त्रक्सरसिजरसं स्वर्ध्यमाविश्चकार।

प्रीत्याकाले किल बहुमता पूज्यपूजा गुणाय।।16

अर्थात् सीताजी के जीवन की इच्छा से सुंदर वनमाला धारण किए हुए भगवान् श्रीराम ने हाथी के समान मत्तगुण वाले प्रेम विद्या में निपुण, उस धीरे–धीरे कान में सूचना देने के सवाभाव वाले भृङ्ग अर्थात् भ्रमर के लिए अपनी माला में विराजमान अत्यन्त मधुर कमल रस का अर्घ्य प्रीतिपूर्वक प्रस्तुत किया क्योंकि समय पर ससम्मान की गई पूज्यों की पूजा बहुत लाभप्रद होती है। माता सीता के समान पतिव्रता नारी भी सुवर्ण मृग को प्राप्त करने की लालसा के कारण ही कपटी रावण के द्वारा हरण कर ली गई। लोभ के कुपरिणाम को दर्शाता हुआ प्रस्तुत श्लोक द्रष्टव्य है –

मय्यादातुं कनकहरिणं दूरगे धान्विधुर्ये
मामन्वेते मगधतनया नन्दने शून्यमेत्य
जह्ने सीता कुणपपतिना हव्यधारा शुनेव
स्त्रीमप्यार्यांतुदति नितरां क्वापि लोभोतिशायी।।17

अर्थात् कपट मृग को पकड़ने के लिए धनुर्धर श्रेष्ठ मुझ राम के सुदूर चले जाने पर पुनः मगधराज पुत्री सुमित्रा जी के पुत्र लक्ष्मण जी के भी मेरे पीछे–पीछे जाने पर सूनी कुटी पाकर कुत्ते द्वारा हव्य धारा की भाँति राक्षसराज रावण द्वारा सीता जी का हरण किया गया। वास्तव में कहीं–कहीं सीमा से अतिशय लोभ पतिव्रता स्त्री को भी बहुत कष्ट दे देता है। 'भृड्.गदूतम्' में चित्रकूट का बडा ही मनोहारी वर्णन किया गया है। चित्रकूट, जो कि महाकवि रामभद्राचार्य जी की कर्मभूमि है तथा वनवासी राम की भी तपोभूमि रही है, के प्रति महाकवि को विशेष अनुराग अत्यन्त स्वाभाविक है इसीलिए चित्रकूट के वर्णन में महाकवि ने श्लोकों की झड़ी लगा दी है और चित्रकूट को ऐसा साड्.गोपाड्.ग वर्णन शायद ही कहीं मिले चित्रकूट के सुप्रिद्ध कामतानाथ की परिक्रमा के महात्य का वर्णन कवि ने भ्रमर के माध्यम से कुछ इस प्रकार किया है।

गत्वा गत्या विजितमरूता पर्वतः कामदौषौ
नत्वा मूर्ध्ना मधुकर परिक्रम्य तामर्थसिध्यै
कामानिष्टान् किल निजरजस्सेवकेभ्यो ददानो
जैत्रो जाग्रन मणिरिव गिरिर्भारते भाति दैवः।।18

अर्थात् हे भ्रमर! वायु को जीतने वाली अपनी गति से जाकर शिर से प्रमाण करके अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए कामद्पर्वत (कामतानाथ) की परिक्रमा कर लेना। अपनी धूलि का सेवन करने वालों को अभीष्ट कामफल देता हुआ यह विजय पर्वत चिन्तामणि के समान भारतवर्ष में जाग्रतरूप में सुशोभित हो रहा है। पुण्यसलिला मन्दाकिनी तट पर स्थित रामघाट की महत्ता का वर्णन कविवर ने इस प्रकार किया है–

भूयस्त्राघटितघटने रम्यतां रामघट्टे
मन्दाकिन्या कटक इव यो नित्यमाभाति भासा।
यत्रा सीनान्मधुप तुलसीदासतोहं ग्रहीता
स्म्याविर्भूयावनिपतिशिशुचन्दनंप्रेमगृह्यः।।19

अर्थात् हे भ्रमर! फिर तुम अघटित घटना वाले रामघाट पर ही रम जाना। जो अपने प्रकाश से मन्दाकिनी जी के कंकण की भाँति निरन्तर सुशोभित रहता है। जिस रामघाट पर बैठे हुए आगामी कलिकाल में तुलसीदास नामक संत से राजकुमार रूप में प्रकट होकर मैं चन्दन ग्रहण करूँगा। क्योंकि मैं प्रेम का पक्षधर हूँ। काव्य सौष्ठव, कल्पना की उड़ान तथा लोकहित के संदेश देने में महाकवि रामभद्राचार्य किसी भी दृष्टि से किसी अन्य महाकवि की तुलना में उन्नीस नहीं हैं अपितु आज के समय में ऐसी प्रज्ज्वल रचना करने वाले कवियों में वे मुकुटकणि के समान शीर्ष पर विराजित हैं तथा उनकी कृति ''भृङ्गदूतम्'' दूतकाव्य परम्परा की श्रृंखला में शीर्ष स्थान पर विराजमान है।

संदर्भ :

1. श्रीमद्भागवत – द. स्क., श्लोक सं.– 12
2. श्रीमद्भागवत – द. स्क., श्लोक सं.– 16
3. श्रीमद्भागवत – द. स्क., श्लोक सं.– 21
4. श्री हनुमद्दूतम्. श्लोक सं. – 21
5. श्री हनुमद्दूतम्. श्लोक सं. – 21
6. भृङ्गदूतम् सं. – 113
7. भृङ्गदूतम् सं. – 216
8. भृङ्गदूतम् पृ.सं. – 124
9. भृङ्गदूतम् पृ.सं. – 119
10. भृङ्गदूतम् पृ.सं. – 128
11. उत्तरमेघ श्लोक सं.– 02
12. उत्तरमेघ श्लोक सं. – 16
13. उत्तरमेघ श्लोक सं. – 24
14. उत्तरमेघ श्लोक सं. – 39
15. उत्तरमेघ श्लोक सं. – 44
16. पूर्वभृङ्गदूतम् श्लोक सं. – 08
17. पूर्वभृङ्गदूतम् श्लोक सं. – 30
18. उत्तरभृङ्गदूतम् श्लोक सं. – 246
19. उत्तरभृङ्गदूतम् श्लोक सं. – 234

कविताएँ

पंजाबी कवि मोहनजीत की कविताएँ

मोहनजीत पंजाबी कविता में चर्चित हस्ताक्षर है वे पिछले लंबे समय से कविता लिख रहे हैं । सहजता उनकी कविता की विशेषता है। एक तरफ यहाँ नारेबाजी ,जुमलेबाजी और आन्दोलन की कविता है वहाँ मोहनजीत सहज और सरल शब्दों में पंजाबी संस्कृति और दैनिक जीवन के बिंब अपनी कविता में सहेजते है। वैश्वीकरण और व्यक्तिवाद के इस दौर में बदलते रिश्तों के मुहावरे को मोहनजीत ने अपनी कविता में रेखांकित किया है। अब तक इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं यहाँ कुछ कविताओं का अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होने वाली पंजाबी से हिन्दी में अनुदित पुस्तक 'कोणार्क और अन्य कविताएँ' से दिया जा रहा है

अनुवादक : हरप्रीत कौर

दुखती रग –

मैंने गुलाब से पूछा
तेरा बचपन कहाँ है।
कहने लगा–कांटों को पता है

पर्वत–शिखर से पूछा
तुम्हारा इंतजार कितना लंबा है
कहने लगी–गुफा से पूछूंगी

समंदर से पूछा
कब सोता है तू
कहने लगा– तूफान ही बता सकता है

जल से पूछा
कब सूखता है
कहने लगा– मल्लाह से पूछना था

मां से पूछा
दंतकथाएं कैसे बनी थी
कहने लगी–धरती ही जाने,
पूछने का यह सिलसिला जारी था
कि बिजली की कौंध की तरह
कोई आवाज तेजी से मेरे करीब से गुजरी
और कहने लगी–
और मैं तेरी दुखती रग हूं
कुछ मुझसे भी पूछ लिया कर।

मैं यहां रहना चाहता हूं
दिनों की तरह बढ़ता घटता
रातों के आने जाने की तरह
मैं यहां रहना चाहता हूँ

मेरे पास बच्चों के
छोटे–छोटे चुहल–मुहल
छोटे–छोटे रोल–घोल हैं
मै इन पत्तों में पवन सा रुकना चाहता हूँ

मेरे साथ रोज के कामों में उलझी पत्नी है।
जिसकी चाह–उमंगों के जंगल में
सपनों का चंबा खिलता है।
मै इस आकाशगंगा में
रोशनी के घेरे सा फैलना चाहता हूँ

वह मेरी बूढी मां का चेहरा है
जहां जिंदगी के अनेक ज्येष्ठ–आषाढ़ हैं
कभी आस कभी उम्मीद बने हैं।
मैं इस पृथ्वी के चप्पे–चप्पे से चश्मे सा फूटना चाहता हूँ

यह मेरी कविता है
जिसके साथ मेरा कुछ बांटा हुआ नहीं
इस बूंदाबांदी में
अपने–आप भरा–भरा लगता है
मैं इस चटक चांदनी में
लाट–सा जलना चाहता हूँ

अपने यारों संग चलना चाहता हूँ
जिसकी धूप–छाया में
पंखोंसा खुला, आकाशसा फैला हूँ
किसी की तेज बारिश में
सिर से पैर तक गच्चोगच्च हूँ
मैं इन सड़कों पर चलना चाहता हूँ

जहां घटनाएं दरख्तों के पत्तों सी उगती हैं
और
सुख की घड़ियों की तरह अलोप हो जाती हैं
और पीछे
टूटे पुलो की लाल रंगत की तरह पानी में घुलती रहती हैं ।
मैं इन सब में– बतकही सा बिचरना
शोक सा पनपना
जुभी सा मटकना
चुप्प की तरह गुजरना चाहता हूँ
मै यहां रहना चाहता हूँ

उदास पंक्तियां

वह इतना हँसता है जितना कभी कोई हँस सकता है
अभी कल ही एक नवविवाहित मित्र ने कहा –
तुम्हारे साथ तो पत्नी की याद भूल जाती है
और वह जोर से हँसा
जैसे जुबान पर नीम घुलती है

वह इतना हँसता है जितना कोई हँस सकता है
उसे याद आता है:
छुटपन में, एक अध्यापक रोजाना उसे उसकी कक्षा से निकाल देता था
क्योंकि वह हँस पड़ता था
और एक दिन अध्यापक ने देखा
पुस्तकालय से उसने जो पुस्तकें पढ़ी थी
उनकी सभी उदास पंक्तियों के नीचे आंसुओं की कतारे खड़ी थीं

उस दिन भी वह चुप था
जिस दिन उसका गभ गीतकार मित्र इस दुनिया में न रहा
और अगले दिन उसने एक कविता लिखी
जिसमें एक बांसुरी जैसी लड़की का जिक्र था
दोस्त मसकरियों में हँसे और एक दूसरे को शरारती लहजे में देखने लगे।

उन्होनें तिरछी नजरों से नए इश्क को मुबारक कहा
वह खूब हँसा– इतना कि फिर हँस न पाया
यह बांसुरी सी लड़की मृत मित्र की मंगेतर थी।

उस दिन भी वह चुप था
जिस दिन उसे पता चला कि उसकी बहन के घर सौतन आ गई थी
उसने बहन को खत लिखा:
'हँसते का यह सबसे दुखी दिन है'
और उत्तर था
'हँसते आदमी का बस इतना ही मन है?'
उस पल भी उसने जहर निगला
और महफिल में हँसी का गुब्बारा फटा
और रात उसने वह फिल्म देखी
जिसकी नायिका रोगी को रिझाने के लिए खुद भी रोगी बन गई थी
घर आया तो किसी आत्मकथा से दो वाक्य पढ़े
खचाखच भीड़ में एक नंगा चेहरा ही काफी है'
२.
वह इतना हँसता है जितना कभी कोई हँस सकता है
बस में,कक्षा के कमरे में, शराबखाने या सड़क पर
दोस्तों की पगड़ियों के रंग देखकर
या विद्यार्थियों की पुस्तकों पर चढ़े फ्लैप देखकर
शौकीन पब्लिशर से चाय पीकर
लेखकों की सभा के गैरसाहित्यिक पदाधिकारी पर
या उस पत्रिका के एडिटर पर
जो बेडियों में जकड़े देशभक्त की गिरफ्तारी की आकर्षित सुर्खियां जमाता है
और अखबार की गिनती बढ़ाता है
वह सोचता है–
झूठे पुलिस मुकाबले की तरह है
कलाकारों की जत्थेबंदी का रजिस्टर होना

वह सोचता है
स्थापित नाटककार, सताई हुई औरत को क्यों बनाता है इश्तिहार

वह सोचता है
हजारों तीर्थों वाले देश में, हर शहर के भीतर
कुछ लोगों की अलग बस्तियां क्यों होती है
वह सोचता है
आजादी के कई दशक बाद भी पत्तलों की चटन पर पलते लोग
अगर रोटी के लिए सड़कों पर निकल आते है तो हैरानी क्या?
वह सोचता हैरू
और इतना हँसता है जितना कभी कोई हँस सकता है
संवाद चित्र–3

व्यभिचार
उसने दूसरी बात कही थीः
'जो त्याग करते हैं वही भोग करते हैं'
खिड़की खोली तो धूप प्रश्न बनकर खड़ी थी
एक चाय की प्याली मिलेगी या बात शुरू करूँ ?
मैने पूछा—'1947 के बाद बात शुरु करने के लिए तेरे पास
और भी कोई विकल्प है, ए बंदे?'
मैं चुप हो गया
जब ,जब भी बात का वक्त आया, तू चुप हो गया
कमरे में ठहाके लगे, गूंजे, ठहाके लगे, गूंजे
विश्वविद्यालय के टुकड़ों पर पलने वाला
किस्सागो
बुद्धिजीवी — लफ्फाजी का गुलाम
बेचारा लाचार—
खूब भाई खूब ! तेरे शब्दों का व्यभिचार
जो त्याग करते हैं...
भ्रम का?
नहीं दोस्त ! कर्म का
खिड़की खोली तो बाहर शाम थी
लालसा थी वासना थी
मुझे तो आसमान को खिड़की लगानी थी
मुझे तो आसमान में झूला डालना था
जो त्याग करते हैं , वही भोग करते हैं...
मैने भीड़ की तरफ देखा
किसी ने मुझे गले से पकड़ा
आवाज बुलंद हुई शेम शेम शेम
खिड़की सपाट खुली थी— बाहर घुप्प अंधेरा था

उन्नीस सौ चौरासी

खबर जो लपट बनकर फैल रही थी
उसकी एक चिंगारी मेरे आंगन में भी गिरी
और माहौल में धंस गई
तभी वह आई, हांफती हुई डरी हुई,
सहमी हुई, घबराई हुई
कहने लगी—
जैसे भी हो तू अपने घर पहुंच जा
वक्त वेवक्त होता जा रहा है

लेकिन, मैं अपनी तबियत का गुलाम
सोचा—ऐसा भी क्या है?
चिंगारी किस तरह की हो सकती है?

तभी वह फिर आई, हांफती हुई और सहमी
और खौफजदा
और बोली—तू अभी भी यहां है?
चिंगारी धधकती जा रही है
तू यहाँ से जाता क्यों नहीं?
मै तुझे कैसे समझाऊँ
भीड़ घनी होती जा रही है...

घुसर—मुसरा सफर है
तूफान से पहले वाली चुप्प
घर पहुंचा, लगा

चिंगारी इधर भी गिरी है
जो सांझ होने तक और लाल हो उठी थी
और अगले से अगला दिन
अंधेरी परे जोरों पर
चारों तरफ विसियर काले नाग
दीवारों के साथ बिच्छु ही बिच्छु
मेरी पहचान जलने लगी

मैने अपने बेटों के
लंबे केश देखे
और फिर केशों के बगैर उनके नैन—नक्श विचारे
मैं जुएबाज नहीं था
फिर भी अपनी पांचाली को नग्न और मसली हुई देखा

मेघ तो पहले ही आंखों में थे
और फिर एक दीवार उभरी
जिसमें दो नन्हें नन्हें सूरजी चेहरे चिने थे
मैंने एक माँ को ठंडे बुर्ज में बर्फ होते देखा
सोचा इतिहास सिर्फ स—संवत् तारीखे नहीं होता
इतिहास होने और जीने का व्यवहार है
इतिहास अस्तित्वों का तकरार है
और अस्तिव— वर्ग है वर्ण है
भूखण्ड है पहचान है
और इससे परे भी कुछ है
पन्ने पर लिखा कविता का एक बोल

कुछ वर्ष पहले की बात है
वह मेरे पास आई
और कहने लगी—

वक्त बेवक्त होता जा रहा है

रात

मैं अपनी रात ढूंढ रहा हूँ
जो तुमने कहीं खो दी है
दीन मिला तो दुनिया क्यों भुला दी?
गोया दिन तो रात का थोड़ा सा बकाया था

रात जो मैंने तेरी कलाई पर बांधी थी
तेरे गजरे के स्पर्श से उदास हो गई
गोया गजरे फक्त दिन के लिए होते है
रातों के लिए फक्त खुशबू

मैंने तेरी कलाई से जो रात बांधी थी
दिन तो फक्त उसी की छोटी सी स्मृति था
और तूने दुनिया ही भुला दी

मैं अपनी रात ढूँढ रहा हूँ
जो तुमने कहीं खो दी है

जोगण

छोहरछिंदी बन–बनकर बैठती है यह 'नाजों कुड़ी'
कहती है–
'ले जा मुझे घुमाने यहां जी' मानें'
कभी सहेली को बताती है:
'लेकर नहीं जाता कहीं
हर बार बरसात ऐसे ही निकलती है'

सोनकेशी हिरणाखी मटक–मटक चलती है
गहरा–गहरा सा देखती है
जैसे मैं कोई दर्पण हूँ
और कुछ कहती है
लंबे बालों को झटकती है
आधे बाल चेहरे पर बिखेरती है
साड़ी का किनारा उंगली पर लपेटती है
आंखों में कामना भरती है
और कहती है:
ले जा न घुमाने मुझे
रेगिस्तान,
पहाड
या समंदर की तरफ
या वहां वहां...
यहां धरती और अंबर मिलते हैं
पानियों में घुलते हैं
मुझे वह क्षण ताकने हैं जब पेड़ों पर पत्ते आते हैं
छोहरछिंदी
बन–बन बैठती है ये नाजो कुड़ी चिड़ी
कई बार कानों में' कंना–मंनां कहती है
या होले से हाथ पर हाथ रखती है
सखियाँ देखती हैं
दोस्त देखते हैं
जैसे हवा बहती है
जैसे फूल खिलते हैं
ऐसे मिलती है यह नाजों कुड़ी

घूमना चाहती है कहीं भी मेरे साथ
मैं भी जाना चाहता हूँ दूर
पर मुलतवी होता रहता है सब कुछ
न वह कहना बंद करती है
न मैं रोकता हूँ

रात आती है
सपना आता है:
चीड़ के रुख हैं
पानियों के शरीर हैं
रेत की चटाई है
सुनहरी काई तले दीपक जलता है
कभी–कभी
तेज सांसों की आहट सुनती है।
या दूर कहीं बांसुरी बजती है

संवाद

तेरे और मेरे बीच
जो कुछ और जितना कुछ समझा नहीं गया
उसे उसी तरह रहने देना चाहता हूँ
इन नजदीकियों की भी अपनी लज्जत है
इस 'जितने कुछ' के समझे जाने के बाद
जो कुछ होगा
मुश्किल होगा

अपनी अब की मुश्किलों के सामने
नई मुश्किलात की लकीर

कितनी पराई सी लगेगी
मैं तो समझता हूँ शायद तू भी समझता होगा

फिर अगर ये ठीक है
तो तेरे और मेरे दरम्याँ
जो कुछ और जितना कुछ समझा नहीं गया
उसे उसी तरह देना चाहता हूँ
२.
मैंने जिस मोह को अपने मोह से अलगाया है
उसकी कुछ किरचें मेरे पास हैं
जब भी कोई मोहवंधी रात जागती है
कमर से बंधी किर्चियाँ उंगली के पोर से तोड़ता हूँ
उनींदेपन की चांदनी में
लहू के बूटे उगाते–उगाते
आधे से ज्यादा या ज्यादा से आधी बीत गई है
जिंदगी जीने के अनेक ढंगों में से
ये कैसा ढंग है
गोया जिंदगी जीने का यह भी तो ढंग है
३ .
भला यह भी कि
तेरे जैसी उड़ान मैं भी भरूं
अगर मुझे अपनी चाल पर नाज है
तो किसी के पंख गिनने के मेरे लिये कोई मायने नहीं
अपने पंख जलाकर भी
मैं तेरे पास से बिना लड़खड़ाए निकल गया
जितनी बार भी तेरे पास से ऐसे गुजरा हूँ
मैं ही जानता हूँ मुझे जीवन कितना कितना कठिन लगा है
पर इसके बाद जो जीने लायक देखा
उतने पल ही अपने हों
तो कुछ दिन और निकल जाएँ
4.
जिन बातों से कुछ कहने–कहने की नौबत सी आती है
उनसे दूर न कर
मैं इनमें रहकर भरा–पूरा होना चाहता हूँ
तेरी दूरियों ने मुझे गुब्बारे सा उछाला है
पर ये अलगाना कैसा है
पृथ्वी से टकराने से पहले ही तारा बन जाता हूँ
आसमान के किसी किनारे लग जाना शाप ही तो है
हाथों का स्पर्श कितना गर्म गर्म है
गुडकते गुटकते पंछी जैसा
कभी एक बार जो बाहों में ले लूं
तो दूर मत कर
इन्हीं बातों से तो कुछ कहने की नौबत आती है

सात नज्में

जिस शोर में कान सुन्न हो जाते हैं
उसने कतरन–कतरन होकर भी मेरा साथ नहीं छोड़ा

दरिया पार मेला पूरी तरह भरा है
और इस तरफ मैं
पैरों को छुकर जा रही लहर में
अपने निशान ढूँढ रहा हूँ
शरीर पर कोसी धूप की सिहरन के बिना
इस वक्त
मेरे पास सांसों की आवाज बाकी है

२.
गहरी रात और मैं चलते–चलते यहां पहुंचे
वहां एक आवशार है
अभी–अभी यहां से चांदनी नहा कर निकली है
इस गूँज से मुझे बार–बार
अपना ही नाम क्यों सुनाई पड़ रहा है
ये आवशार मुझे क्यों बुलाती है
३.
ये पंछी
जो अभी–अभी सूरज के कुंड से
पंख फडफडाता निकला है
और दुधिया बदली में समा गया है
मुझे इसके भीगे पंख देखने हैं
मुझे एक कविता से दो–चार होना है

४ .
उन्होंने क्षितिज की तरफ देखा और कहाः
बस !
जमीन और आसमान का इतना ही अंतर है?
उसने उनकी तरफ देखा और कहा
हाँ
जमीन और आसमान में फक्त इतना ही अंतर है
5.
मुझे तो जाना है
तुझे कुछ कहना है
जो कहना है, कह !
मुझे तो अब जाना है
जैसे भी रहना है, रह!

मुझे तो जाना है
पुस्तक
अंगूठी
रास्ते
यादें
तुझे जो लेना है, ले !
मुझे तो जाना है

6.

वृक्ष का यही उलाहना है
उसके पास से रास्ता जाता है
वहीं से दरिया बहता है
कांपता है
शर्माता है
वृक्ष चाहता हैः
कि उसके पास जाऊँ
कल की बात खत्म करुं
आज की बात सुनाऊँ

७

पता नहीं क्यों

तू सचमुच ही मुझसे इसलिए मिलने आई है
या राह भूल गई है?

मुझे पता है तू इसलिए नहीं आती
कि मैं ऐसा सोचता हूं
पता नहीं क्यों पर ये हुआ है
और जो हुआ है तो बता–
ये तपाक क्या होता है?
सुख दुख कैसे पूछा जाता है
तुम नहीं आती तो सोचता हूं कब आओगी
तुम आती हो तो सोचता हूँ कहां बिठाऊँ !

निर्दोष चुनरी ....

सिर पर रखी चुनरी
धीरे धीरे सरक गई कन्धों तक
और गर्दन में आकर वो
लज्जा का ताज बन बन गई
पर ये क्या!
क्या ये फांसी की सजा थी
या कुछ और
फिर क्यों उतार फेंकी गई
निर्दोष चुनरी
जो नारी के सौन्दर्यता की
ताज थी
क्या लज्जा आज नारियों का
आभूषण नही रह गया है ?
वक्त बदला और समाज भी
सोच भी बदली है
क्या बदलते समय के साथ
तहजीब को भी भुला देना चाहिए?
क्या खुद को नंगा कर देने में ही
हमारी आधुनिकता व स्वतंत्रता का
राज छिपा है?
तो फिर हमारे पूर्वज भला
असभ्य कैसे हो सकते हैं?
जरा खुद को देखो......
तुम्हें खुद अच्छा लगने लगा है
अपने उभारो का प्रदर्शन
होठों में लाली
आखों में कजरा
किस बन्धन में स्वतंत्रता के नाम पर
पुनः बंधती जा रही हो
ये सौन्दर्य प्रदर्शन आखिर किसलिए?
क्या तुम्हारी सोच पर
तुम्हारे भूत का प्रतिकार है
क्या देह प्रदर्शन ही एकमात्र
आधुनिकता की हुंकार है
या फिर तुम्हें ही पसंद
आने लगा है........
मनचले लड़कों से ये सुनना
कि क्या माल है
और फिर फुसफुसा के
आगे बढ़ जाना और कहना
घर में माँ बहन नही है क्या?
मेरी माँ भी हैं और बहन भी
माँ की गोद में साड़ी का पल्लू है
तो बहन के शरीर में आँचल
मैं कैसे तुलना कर सकता हूँ
अपनी बहन और तुमसे?
सोचो तुम खुद जरा........
शायद मेरी सोच में तुम्हें पुरूषत्व की
गंध मिले
या फिर तुम्हें लगे कि तुम्हारी स्वतंत्रता ही
गढ़ने लगी है मेरी ही आँखों में।

सुधीर कुमार तिवारी

मैं हारी नहीं

तुमने मुझे जला दिया
मेरा चेहरा, मेरा शरीर गला दिया,
सोचा कि हार जाउंगी, नहीं खड़ी हो पाउगी
पछताउगी की तुम्हें "न" क्यूं कहा
नहीं बता पाउगी कि तुमने ऐसा क्यूं किया
लेकिन तुम भूल गए
मेरी ताकत, मेरी शक्ति, मेरे चेहरे में या मेरे सुडौल शरीर
में नही बसती हैं
वह कहॉ हैं? यह तुम या तुम्हारे जैसी सोच वाले लोग
कभी नही जान पाएगें
तुम्हें लगा होगा मुझे घायल करके तुम जीत गए
पर नहीं तुम तब भी नहीं जीते थे जब तुम्हें मैंने "न"
कहा था
और अब तो बिल्कुल नही
क्योंकि मेरे घाव, मेरा कुरूप चेहरा, मेरा बेडौल शरीर
मेरा बेखौफ मन, मेरी बुलन्द आवाज गवाह हैं
मेरी ताकत, मेरी जीजीविषा, मेरी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की
और
मेरी फिर से उठ कर खड़े होने,
अब तो तुम्हें समझ आ गया होगा कि स्त्री की
अस्मिता देह से परे हैं।

दीपमाला त्रिपाठी

पुस्तक समीक्षा

खास मौकों पर उद्योग तो, सुविधा देखकर चौथा खंभा बन जाता है मीडिया

पुस्तक का नाम : चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड
लेखक : दिलीप मंडल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2016 प्रथम संस्करण)
978–81–267–2820–6
मूल्य : 450 रूपये
पृष्ठ : 152

देश के दस से अधिक प्रमुख मीडिया घरानों में अपनी सेवाएँ दे चुके मीडिया चिंतक दिलीप सी मण्डल की नई किताब चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड अपने शीर्षक से उतनी ही लुभावनी प्रतीत होती है जितने कि पुस्तक के अध्यायों के शीर्षक। सीधे तौर पर कहें तो इस पुस्तक के शीर्षक को पढ़ आप भारतीय मीडिया के भविष्य की छवि को ध्यान में रख सोचने को मजबूर जरूर होंगे।

दिलीप मण्डल इस पुस्तक की भूमिका मे पाठक को आसान शब्दों में विषय प्रवेश करवाते है।

समाचार पत्रों और टीवी चैनलों का भारत में जबरदस्त विस्तार हुआ है। इंटरनेट भी सहम सहम कर ही सही, लेकिन आगे बढ़ रहा हैं। मीडिया स्पेस में रही सही खाली जगह मोबाइल और मोबाइल इंटरनेट ने भर दी है। अब लगभग हर मुट्ठी मे मोबाइल है और मोबाइल में सूचनाएँ और संवाद है। मोबाइल फोन लोगों को सिर्फ बात करने की सुविधा ही नहीं दे रहा बल्कि खबरों कि दुनियाँ से भी जोड़ रहा है। सूचनाओं का देश में अभूतपूर्व विस्फोट हुआ है।

वहीं दूसरी तरफ यह सवाल भी उठा रहे है कि सूचना तंत्र का लोगों तक पहुँच जाना और बहुत सारे लोगो का समाचारों का उपभोक्ता बन जाना क्या यह सुनिश्चित करता है कि देश में सूचनाओं का लोकतन्त्र हैं।

मीडिया चिंतक,आलोचक,समीक्षक और पत्रकार मीडिया को लोकतन्त्र का चौथा खंभा मानते है, दिलीप मण्डल की यह किताब तथ्यों के आधार पर मीडिया को खास मौकों पर उद्योग तो सुविधा से मीडिया के चौथा खंभा बनने की कहानी पेश करती है।

पुस्तक के पहले लेख में लेखक मीडिया को शहँशाह जैसी उपाधियाँ देते है। दूसरे नजरिए से कहें तो दिलीप मण्डल ने मीडिया को चोरी करते हुए,फिर कोतवाली की भूमिका में तथा फिर मुंसिफ की भूमिका को अदा करने वाले तथ्यों को रखा है। नीरा राडिया टेप कांड व अमर सिंह टेप कांड के तथ्य से वो मीडिया के चोर होने की बात कहते है।

राडिया कांड में खासतौर पर पत्रकारों और मीडिया समूहों के बारे में मुख्य धारा के मीडिया में एक भयानक खामोशी देखी गई। अप्रैल 2010 के बाद से ही मीडिया कर्मियों को इस टेप के बारे में मालूम था लेकिन टीवी न्यूज चैनलों और समाचार पत्र पत्रिकाओं में इसे कई महीनों तक रिपोर्ट नहीं किया गया। ओपें और आउटलुक पत्रिकाओं में छापने के बाद भी समाचार पत्रो और चैनलों मे इसे लेकर खामोशी बनी रही, जिसे देखने के लिए ओपेन पत्रिका नें अपने दो पन्ने सफेद छोड़ दिये थे। मीडिया संगठनों ने इस मामले मे चुप्पी साधी रखी जो स्वाभाविक भी है।

पुस्तक का दूसरा आलेख पेड न्यूज को उदाहरण सहित समझने में मददगार है। पेड़ न्यूज का मामला भारत में 2011 मे संज्ञान में आया जब उत्तर प्रदेश के एक एम एल ए की सदस्यता रद्द कर दी गई। मामला पैसे देकर खबर के छपवाने का था। आलेख में न्याय की बात करते हुए लेखक कहते है कि खबर के लिए पैसे देने वाली नेता की सदस्यता रद्द होना तो समझ मे आता है कि यह लोकतान्त्रिक अधिकारों के हनन का मामला होने की सजा थी। किन्तु मीडिया (लोकतन्त्र का चौथा खंभा)द्वारा पैसे लेने पर सिर्फ उसे इसी मामले पर उपदेश दिया गया। ऐसे कई तथ्यों के साथ एकतरफा कार्यवाही को उजागर करते हुए दीलीप मण्डल कहते हैं कि पेड न्यूज में खबर छापने वाला और छपवाने वाला दोनों ही पक्ष फायदे मे रहते है जिसे इसका नुकसान है वह है पाठक या दर्शक। पृष्ठ संख्या 24

एक अन्य आलेख के माध्यम से हर तीसरे महीने देश के अखबारों पत्र पत्रिकाओं की पाठक संख्या बताने वाले सर्वे इंडियन रीडरशिप सर्वे की विशेषताओं पर लेखक ध्यान दिलाते हुए बताते है कि विज्ञापन दाता तथा एजेंसियां अपने प्रकाशन देने संबंधी फैसले इसी सर्वे के निर्णयों के माध्यम से लेते है। आलेख मे पाँच हिन्दी भाषी राज्यों राजस्थान,बिहार, उत्तर प्रदेश,मध्य प्रदेश,दिल्ली के आंकड़ों के आधार पर मीडिया मोनोपली का निष्कर्ष भी निकालने है। निष्कर्ष इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि जिन आंकड़ों को हम रीडरशिप सर्वे मे देखकर यह सोच रहे हैं कि कौन सा पहला दूसरा और तीसरा ज्यादा पाठक संख्या वाला अखबार है वास्तव में तो वह एक ही मीडिया घराने के अन्य उत्पाद है जैसे एक कंपनी जूता भी बनाती है तो उसी कंपनी का कपड़े

का भी उसका अच्छा व्यापार है। लेखक किसी एक अखबार को इतना शक्तिशाली होना और सूचना और समाचारों के लोकतन्त्र की दृष्टि से अच्छा नहीं मान रहे है।

दिलीप सी मण्डल एक जाने माने मीडिया आलोचक की भी भूमिका बखूबी निर्वहन करते आए है। जहां पूरा देश जंतर मंतर पर हुए अन्ना आंदोलन में मीडिया की सराहनीय भूमिका की प्रशंसा करता देखा गया यह किताब उसका तथ्यों के साथ पर्दाफाश भी करती हैं। लेखक ने 4–9 अप्रैल 2011 तक की अन्ना आंदोलन के संदर्भ की खबरों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। लेखक दिन पर दिन हुए अन्ना आंदोलनों की खबरों को किस प्रकार कितना और किसकी वजह से तवज्जो दे रहा है यह दिखाने का प्रयास किया है और सफल भी हुए है।

दैनिक जागरण में 4 अप्रैल 2011 तक अन्ना हजारे को बिलकुल महत्व नहीं दिया गया, जबकि इससे पहले वह आमरण अनशन की घोषणा कर चुके थे। 4 अप्रैल के अखबार में अन्ना के बारें में एक मात्र खबर पेज 7 पर सिंगल कॉलम की है, जिसमे राजनाथ सिंह का यह बयान छपा है कि'अन्ना हजारे और बाबा रामदेव से बात करें सरकार'। लेकिन 5 अप्रैल 2011 को अन्ना की खबर उछल कर सीधे जागरण के पहले पन्ने पर आ जाती हैं, जहां इसे दूसरी हेडलाइन बनाया गया है (पृष्ठ 36)।

एक और आलेख में अन्ना के आंदोलन को छद्म इवेंट (स्यूडो इवेंट)या मीडिया चालान की संज्ञा तथ्यों के आधार पर दी है।

पुस्तक चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड आरक्षण विरोधी खबरों का अध्ययन कर उसके चौथे खंभे होने पर सवाल खड़े करती है। पुस्तक में मायावती के सैंडल तथा विकीलिंक्स के हवाले से मीडिया मे चल रही खबरों के सच से भी रूबरू कराया गया है। बीएसपी सुप्रीमो पर मीडिया ने आरोप लगाया कि उन्होने अपने प्राइवेट जेट से मुंबई से सैंडल मंगाया और उनके लिए फूड टेस्टर भी काम पर रखे गए है। ये सारे आरोप अगर आप मीडिया की खबरों से सच मान कर बैठे हुए है तो इस मिथक को यह किताब तोड़ेगी, वो भी आधिकारिक तथ्यों के साथ। विकीलिंक्स के खुलासों और खबरों के यथार्थ को समझने के लिए आपको इस पुस्तक का सहारा लेना चाहिए।

मीडिया अब लोककल्याणकारी भूमिका निभाने के बजाय कार्पोरेट के हितों का प्रतिनिधित्व करता दिखाता है और इसीलिए दिलीप मंडल मीडिया को चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड कहते हैं। चौथा खम्भा इसलिए कि मीडिया अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की आजादी की दुहाई देता है और कंपनी इसलिए क्योंकि वह मुनाफे की दौड़ मे पागल की तरह भी दौड़ता दिखता है। दिलीप मंडल जी कहते हैं– "भारत में उदारीकरण के साथ मीडिया के कार्पोरेट बनने की प्रक्रिया तेज हो गई और अब यह प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। ट्रस्ट संचालित 'द ट्रिब्यून' के अलावा देश का हर मीडिया समूह कार्पोरेट नियंत्रण में है (पृष्ठ 65)"।

पुस्तक की सबसे खास बात मुझे आलेखों के चयन और उनके वरीयता क्रम को लेकर लगी। पुस्तक पढ़ते हुए मेरे मन में मीडिया को लेकर जो सवाल उठते गए अगले अध्याय मे उन्हीं सवाल पर एक अध्याय मिलता चला गया । अगले अध्याय में लेखक मीडिया की नीति और नैतिकता पर सवाल उठाने के लिए सोशल मीडिया पर गहरी पैठ बना कर रखे हुए दिखाई देते है।

फेसबुक पर कमेन्ट करते हुए सत्या व्रत वर्मा यह जानना चाह रहे है कि जो मीडिया खुद भ्रष्टाचार मे इतने गहरे तक डूबा हुआ है वो भ्रष्टाचार के खिलाफ हो रहे आंदोलन का समर्थन क्यो कर रहा था ? क्या अन्ना के असर से मीडिया की अंतरात्मा अचानक जाग गयी (पृष्ठ 85)।

आलेख में 2009 से 2011 तक की मीडिया नीतियों की उदाहरण सहित व्याख्याए आपको मिल जाएगी। वैसे मामला नीति और नीयत दोनों का ही मालूम होता है। पुस्तक मे दिए एक उदाहरण से आप समझ सकते है कि पेड़ न्यूज के लिए मीडिया और राजनेताओ के संबंध क्या होते है। एक उदाहरण में लखनऊ में भाजपा से चुनाव लड़े लालजी टंडन खुद स्वीकार करते है कि उन्होने कानपुर दैनिक जागरण के मालिक को अपने कार्यकाल में क्या–क्या उपहार स्वरूप दिया वो भी मित्रवत। वहीं जब पार्टी की खबर के लिए जागरण ने पैसे की मांग की तो तो लाल जी अपने और मीडिया के सम्बन्धों के भविष्य मे बिगड़ने की बात भी कहते है। कुल मिलकर मामला साफ है तुम मेरा काम करो और मैं तुम्हारा। लेकिन यहाँ जनता का सवाल सिर्फ इतना है कि जब आप एक दूसरे के लिए काम कर रहे है तो मीडिया लोकतन्त्र का चौथा खंभा क्यो? इसे पूरी तरह उद्योग की श्रेणी मे ही रखना उचित होगा।

नीति और नैतिकता के सारे मामले अभी छोटे थे क्योंकि मीडिया में नीरा राडिया का केस उजागर होना बाकी था। राडिया कांड और मीडिया शीर्षक से पुस्तक में एक आलेख है जिसमे लेखक मीडिया की छवि पर प्रकाश डालते है और बताते है कि 2010 का दौर मीडिया की काली करतूतों के वर्ष के रूप मे याद किया जाता है और किया जाएगा।

दिलीप मण्डल लिखते है कि –

इन टेपों को दरअसल देश में राजनीति शास्त्र,

जनसंचार,अर्थशास्त्र मैनेजमेंट,कानून आदि के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। इन विषयों को सैकड़ों किताबें पढ़कर जितना समझा जा सकता है उससे ज्यादा ज्ञान राडिया के टेपो है (पृष्ठ 66)।

राडिया जैसे तमाम किस्से रोज होते रहते होंगे पर मामले का खुलासा हो नहीं पाता। मीडिया और राजनेताओं के सम्बन्धों का पता तब चलता है जब किसी अखबार का संपादक या मालिक राज्यसभा सदस्य बना है या उसे पद्म श्री या किसी भारतीय सम्मान से सम्मानित किया जाता है। राडिया कांड के बाद मीडिया कारपोरेट–राजनीति के त्रिकोणीय सम्बन्धों को आसानी से समझा जा सकता है।

बिरसा मुंडा का नाम सुना है आपने ? शायद सुना हो ? वही जिसने महाजनी शोषण और विदेशी राज के खिलाफ वंचित तबकों की लड़ाई का नेतृत्व किया। 15 नवंबर को झारखंड में जन्में बिरसा को मीडिया में जगह न दिए जाने के कई कारण हो सकते है जिनमें एक मुख्यधारा में बिरसा को लोगो की जानकारी न होना भी हो सकता है। पुस्तक के एक आलेख में जवाहर लाल नेहरू के जन्म दिन पर भारतीय समाचार पत्रों और एक दिन बाद जन्मे बिरसा मुंडा के जन्म दिन की खबरों का तुलनात्मक अध्ययन किया और बताया कि जो मुख्य धारा में नहीं मीडिया में वो मारा जाएगा।

आपने बिहार के अररिया के फोरबिसगंज में 2011 में हुए पुलिसिया हत्याकांड की खबर सुनी है ?पुस्तक में 2011 की इस घटना के बाद की मीडिया रिपोर्टिंग की अंतर्वस्तु पर एक लेख है जिसमें दैनिक जागरण,हिंदुस्तान और प्रभात खबर की खबरों पर अध्ययन किया गया है और निष्कर्ष के रूप में बिहार की इन तीनों बड़े मीडिया समूहों से इस हत्याकांड के नदारद होने की बात की गई है। चौथा खंभा इस हालत में है तो अन्य की हालत क्या होगी यह सोचनीय है। चोमस्की और हरमन कहते हैं कि मीडिया का जन विरोधी होना कोई षड्यंत्र नहीं हैं बल्कि यह उसकी संरचनात्मक विवशता है।

दिलीप मंडल भारतीय मीडिया के अति पूंजीवादी व जन विरोधी स्वरुप को समझाने के लिये न केवल विभिन्न मुद्दों का उदाहरण पेश करते हैं अपितु विभिन्न रिपोर्टों (फिक्की–केपीएमजी, अफैक्स, गूगल ट्रांसपेरेंसी रिपोर्ट, विकिलिक्स के केबल, इंडियन रीडरशिप सर्वे, कोम्स्कोर की रिपोर्ट इत्यादि) का भी सहारा लेते हैं। इसके अलावा अपनी बात को मजबूती प्रदान करने के लिये सम्बंधित मीडिया पाठों को भी उद्धृत करते हैं। खबरों के शीर्षकों का प्रस्तुतीकरण करके वह मीडिया में मौजूद जातिगत विभेद को समझाने के लिये उपयोगी उपकरण पाठकों को प्रदान करते हैं।

चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड कॉमनवेल्थ खेल और विज्ञापन के अंतरसंबंधों की पोल खोलती है वही एक और आलेख में कोल्हापुर के राजा साहू जी महाराज के नाम पर उत्तर प्रदेश में बने जिले पर अंग्रेजी मीडिया द्वारा की गई रिपोर्टिंग की भी आलोचना की है। दिए गए तथ्यों से यह मालूम देता है कि अंग्रेजी मीडिया ने साहू जी महाराज को दलित बना कर पेश किया। बीएसपी जिन्हे अपना महापुरुष मानती आई है उनमें साहू जी महाराज, फुले, पेरियार, नारायणगुरु जैसे समाज सुधारक दलित नहीं है।

देखिये अंग्रेजी मीडिया के कुएं मे किस प्रकार भांग पड़ी हुई दिखती है कि उसे सारे दलित ही नजर आने लगते है

1. इंडियन एक्सप्रेस &amethi now a district named after dalit leader

2. फाइनेंशियल एक्सप्रेस : now amethi falls in district named after dalit leader- (पृष्ठ संख्या–136)

यही नहीं हिन्दी मीडिया मे 4 जून 2010 को दलित नेता द्वारा दिये एक बयान को हिन्दी चैनल एन डी टी वी दूसरा ही रुख मोड पेश करता हुआ दिखता है।

meara kumar says she doesn*t favour cast census यह खबर की हेडलाइन है जिसमे साफ साफ मीरा कुमार के जातिगत जनगणना के विपक्ष मे होने की बात सामने आती है। सच्चाई तो यह थी कि मीराकुमार ने इस तरह का कोई बयान ही नहीं दिया। हेडलाइन हमेशा पाठक दर्शक के दिमाग मे एक प्रेशर डालती है और उस खबर से जुड़ा हुआ महसूस कराती है। ऐसे मे अंग्रेजी मीडिया ने चौथा खंभे की भूमिका की जगह जातिवादी होने का प्रमाण तो खुलेआम दिया है।

मीडिया को जातिवाद, साम्प्रदायिकता, घोर पूंजीवाद, कुलीन हितैषी और जन विरोधी दीमकों ने खंडहर में तब्दील कर दिया है। भारतेंदु पुरस्कार और राजा राममोहन राय राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त कर चुके दिलीप मंडल जी ने 'चौथा खम्भा प्राइवेट लिमिटेड' पुस्तक में भारत की मुख्यधारा की मीडिया के विचलन और विसंगति की मीमांसा का प्रस्तुतीकरण किया है। हालांकि पुस्तक में अन्ना आन्दोलन, नीरा राडिया कांड, राष्ट्रमंडल खेल आदि का कई बार दुहराव है इससे बचने की कोशिश की जानी चाहिए थी। लेखक ने अपनी पुस्तक की भूमिका मे पहले ही स्पष्ट करते हुए कुछ स्तनों के दुहराव की बात जरूर स्वीकारी है और उनसे बचने की असंभावनाओं का भी जिक्र किया है।

मीडिया घरानों में काम करने के दौरान और उसके बाद भी विकास, विस्थापन, जनस्वास्थ्य, शिक्षा नीति और सामाजिक–आर्थिक मुद्दों पर देश के प्रमुख समाचार पत्रों में निरन्तर लेखन करते रहे मीडिया चिंतक दिलीप मण्डल ने

अनेक पुस्तकों के लिए अध्याय लिखे। पहली स्वतंत्र पुस्तक – जातिवार जनगणना संसद, समाज और मीडिया। एक अन्य पुस्तक जातिवार जनगणना की चुनौतियाँ के सह–सम्पादक रह चुके है।

21 वीं सदी के मीडिया और इसके विस्तार को लेकर जगह जगह संगोष्ठियाँ और कार्यशाला होते रहते है पर मीडिया के नैतिक मूल्यो के पतन, सामाजिक संरचना की मीडिया में प्रतिबिम्बिता,मीडिया का घोर पूंजीवादी रवैया और सबसे बड़ी और खास बात मीडिया के किसी खास वर्ग के हाथो की कठपुतली होने की चर्चाए तो होती रहती है पर इनके बदलाव और निवारण पर कोई आगे आता नहीं दिखता। सोशल मीडिया वनाम मुख्य मीडिया इन दिनों केंद्र में है जो मुख्य मीडिया के चौथा खंभा होने की कहानी की असलियत से पर्दा हटाता है। ऐसे में सोशल मीडिया से जुड़ा हुआ कोई व्यक्ति जब अपनी बात जब पुस्तक के रूप में समाज को समर्पित करता है तो वो दिलीप मण्डल बन जाता हैं। इनकी अन्य पुस्तकों की तरह इस किताब में भी मीडिया की पोल खुली है। दिलीप मण्डल ने अपनी इस किताब को अपनी पहली पाठक और संपादक (पत्नी) आर अनुराधा को समर्पित की है। जो उनकी लेखनी के केंद्र मे होती थी।

✦ ✦ ✦

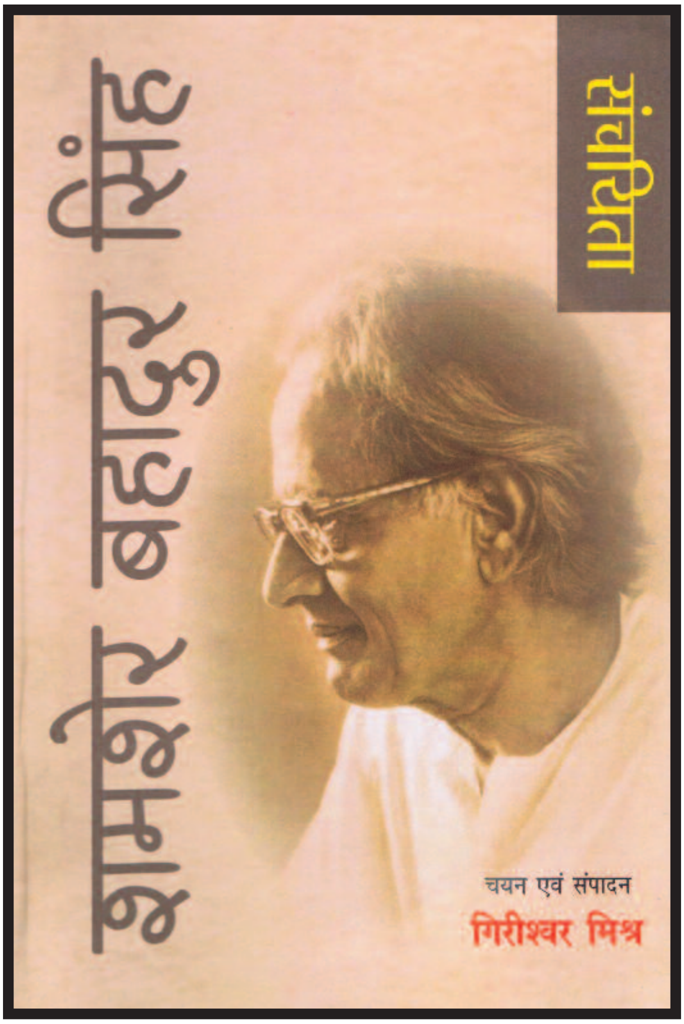

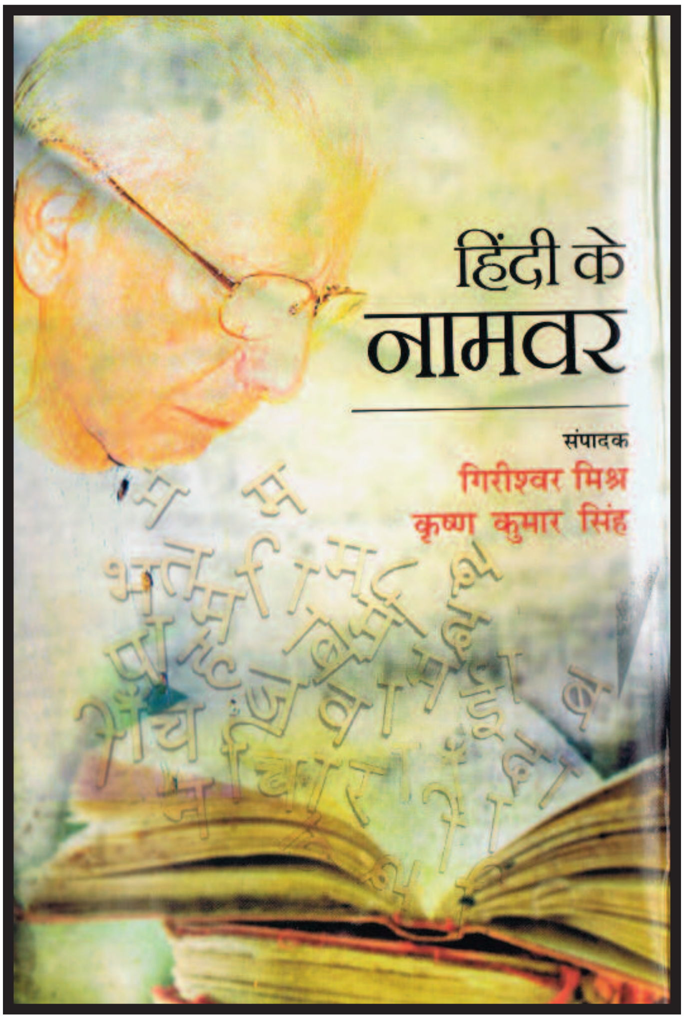

रचनाकार

अमित कुमार	amitprabhakar2ap@gmail.com
ईश शक्ति सिंह	ishshaktisingh@gmail.com
प्रवेश कुमार द्विवेदी	dpraveshkumar@gmail.com
अभिषेक त्रिपाठी	abhisheksocio1991@gmail.com
यदुवंश यादव	yadav14yadu@gmail.com
भवानी शंकर	mbs4media@gmail.com
निलामे गजानन सूर्यकांत	gajanannilame@gmail.com
सतीश पावड़े	satish_ pawade@yahoo.co.in
अम्ब्रीश त्रिपाठी एवं आम्रपाल शेंदरे	ambreesh.tripathi@gmail.com, shendre.amrapals.amrapal@gmail.com
सुधा त्रिपाठी	drshil.anand@gmail.com
हरप्रीत कौर	dr.harpreetkaurr@gmail.com
सुधीर कुमार	tiwarig.sudheer@gmail.com
दीपमाला	Awasthi1905@gmail.com
मनीष कुमार जैसल	mjaisal2@gmail.com

संपादकीय

gcpandey@gmail.com

shambhujoshi@gmail.com

निमित्त पत्रिका के प्रति आपके स्नेह के लिए बहुत–बहुत धन्यवाद। विश्वविद्यालय परिसर की रचनात्मक अभिव्यक्ति के इस समवेत प्रयास में आपका योगदान इस पत्रिका को निरंतर प्राप्त होता रहेगा, ऐसी आशा है।

शुभकामनाओं सहित।